

ڪوٽا-ڦلواڙي

ترجمو ۽ ترتيب

ولي رام ولي

سنگ

ڪوتا- ڦلواڙي

(دنيا جي مختلف ٻولين جي چونڊ شاعري)

ترجمو ۽ ترتيب
ولي رام ولي

ڪا
ڪوئتا پبليڪيشن
حيدرآباد
2006

ڪوينا پبليڪيشن جو ڪتاب نمبر - 11

ڪتاب جو نالو: ڪوتا - ڦلواڙي
(دنيا جي مختلف ٻولين جي چونڊ شاعري)
ترجمو ۽ ترتيب: ولي رام ولي
ڇاپو پهريون: © جنوري 2006ع
تعداد: 1000 (هڪ هزار)
حق ۽ واسطا مترجم وٽ محفوظ
ٽائٽل: مدهوش
ڇپائيندڙ: ڪوينا پبليڪيشن، حيدرآباد - سنڌ
(ساخت چتر پبليڪيشن حيدرآباد جي سهڪار سان)
ڇپيندڙ: ائٽيل ڪميونيڪيشنز، حيدرآباد
قيمت: 200 روپيا

اسٽاڪسٽ:

ذوالفقار بوڪ ڊپو، حيدرآباد، پٺاڻي بوڪ سينٽر - حيدرآباد، تهذيب نيوز ايجنسي - خيرپور ميرس،
هاٿوس آف ناولٽي - ميرپوماٿيلي رهبر بوڪ اڪيڊمي، لاڙڪاڻي، چنيد بوڪ ڊپو - دادی ممتاز بوڪ ڊپو - دادی
الفتح نيوز ايجنسي، سکر، رابيل ڪتاب گهر لاڙڪاڻي ٿر ڪتاب گهر، مٺي، الميز بوڪ ڊپو - عمرڪوٽ
سنڌ بوڪ ڪلب - نوابشاهه، مرجو مل بوڪ ڊپو - بدين، عوامي بوڪ اسٽال - نوابشاهه،
نيشنل بوڪ اسٽال خيرپور ميرس، نئون نياپو ڪتاب گهر - لاڙڪاڻو

All Rights Reserved with the Translator

KAVITA – PHULWARI

(The Garden of Flowers of Poetry)

[A Selected Collection of Poetry of the World]

Translated & Compiled by

Vali Ram Vallabh

First Edition: © January 2006 Kavita Publication

Printed by Intel Communications, Hyderabad.

Published by: Kavita Publication, Hyderabad

(with collaboration of Sahit Chitar Publication, Hyderabad)

9-Rabi Chamber, Court Road, Hyderchowk,

Hyderabad –71000 Sindh.

Tel: 0092-22-2721172

Price: Rs. 200-00

پنهنجن جنر داتائن

بابا

کيولرام هنسراج

(1 جنوري 1900 - 31 دسمبر 1987)

امان

چترپائي ڌيءَ پنجومل

(1 جولاءِ 1920 - 24 آگسٽ 1984)

جي نالي

فهرست

- اداري پاران 15 موهن مدهوش
 - مهاڳ 17 آصف فرخي
 - ڪوٽاڻن جي ڪاڪ ۾ (مترجم پاران) 27 ولي رام وليپ

| نمبر | پولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|-------------------------------|-------------------------------|------|
| 1 | انگريزي | | |
| | (1) عادل حساولا (ڀارت) | واپسيءَ تي ڪوٽاڻون | 31 |
| | (2) نسرايرڪل (ڀارت) | گنگا | 33 |
| | (3) ڪملاداس (ڀارت) | آئيني جي اڳيان | 35 |
| | (4) گوري ديشپاندي (ڀارت) | اڀسارڪا | 36 |
| | (5) اروند ڪرسڻ مهروترا (ڀارت) | هڪ پهرئين سوانح نگار جا تبصرا | 37 |
| | (6) دليپ چتري (ڀارت) | ٻڙ کي ڪيرائڻ | 41 |
| | (7) گيو پچٽيل (ڀارت) | وڻ جي زندگي وڻ لاءِ | 43 |
| | (8) آر- پارٿا سارٿي (ڀارت) | ٽپهريءَ جو | 45 |
| | (9) امرن ڪولتڪر (ڀارت) | مؤت جي پرواري ڪري ۾ | 47 |
| | | ڏيئا | 48 |
| | | گهوڙو | 48 |
| | | هڪ پوڙهي عورت | 49 |
| | | واٽر سيلاءِ | 51 |
| | | چيتنيه | 51 |
| | | الماري | 53 |
| | | اسٽيشن ماسٽر | 54 |
| | (10) ممٽا ڪاليا (ڀارت) | پيءُ کي هڪ تين- ايجر جي پيٽا | 56 |
| | (11) جنڪ لنڊن (امريڪا) | تمنا | 58 |

| نمبر | ٻولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|----------------------------------|-----------------------------|------|
| | | اي خدا! | 58 |
| | (12) ٽي. ايس. ايليٽ (آمريڪا) | اڳتي وڌو مسافرو | 59 |
| | (13) جي. ايم. مهڪري (پاڪستاني) | سنڌ جي ڪنڊرن مان | 62 |
| 2 | اسپيني | | |
| | (1) فريڊرڪو گارسيا لورڪا (اسپين) | شهر ڏانهن واپسي | 65 |
| | | الوداع | 66 |
| | (2) پئبلو نروڊا (چلي) | قاتلو! | 67 |
| | | جل پري | 68 |
| | | سمجھائي | 69 |
| | | امن جي گھر | 70 |
| 3 | اردو | | |
| | (1) سعيد الدين (پاڪستان) | دستانا | 72 |
| | | پر ميريون آهن تنهنجون اکيون | 72 |
| | | گار | 73 |
| | | ءِ دريا گيت ڳائي رهيو هو! | 74 |
| | | اندو ۽ دوريني | 74 |
| | | هڪ بي رنگ ماڻهو | 75 |
| | | مون کان پوءِ | 76 |
| | | دهشت پسند | 76 |
| | (2) ذیشان ساحل (پاڪستان) | اُهي سرڪس وارا | 78 |
| | | هڪ بيجان نظم | 79 |
| | | ڪوئي جي سالگرھ | 80 |
| | | سڙيل الماڙي | 81 |
| | (3) ثروت حسين (پاڪستان) | منهنجي اڏار اجائي ناھي | 83 |
| | (4) سارا شگفته (پاڪستان) | اڪيون بہ جاڙيون پيرون | 85 |
| | (5) صلاح الدين محمود (پاڪستان) | مان هڪ نابينا | 86 |
| | (6) اصغر نديم سيد (پاڪستان) | هنن کي ڇا گھر جي؟ | 88 |
| | (7) عين رشيد (ڀارت) | اي شهر! | 90 |

| نمبر | ٻولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|-------------------------|------------------------------|------|
| | | ڪارو خيال | 91 |
| | | انهن سرن جو ڇا ٿيندو؟ | 93 |
| | | هيءَ صدي ڪجهه رهي آهي... | 93 |
| | | اسان هن شهر ۾! | 94 |
| | (8) بلراج ڪومل (ڀارت) | هڪ پراڻي تصوير | 96 |
| | (9) ڪمار پاشي (ڀارت) | دلاسو | 98 |
| 4 | آسامي (ڀارت) | اوسڪٿا ماڻهو! | 100 |
| | (1) نلماتي ڦوڪان | هوءَ مون کي ننڊ ۾ به ڳولي ٿي | 102 |
| | (2) نرمل پرويا بورڊولوي | موڪلاڻي | 103 |
| | | پريات | 103 |
| | | رڪ | 104 |
| 5 | بلغاريائي (بلغاريا) | مؤت جو گيت | 105 |
| | (1) خرسٽو بوتيوف | حاجي دمتر جي موت تي | 105 |
| | (2) گيو مليو | سيپٽمبر | 108 |
| | (3) نڪولا واپتساروف | اتهاس جي نالي | 110 |
| 6 | بنگالي (ڀارت) | گهر ڏانهن | 112 |
| | (1) سيش مڪوپاڌايبه | منهنجو سورڳ | 115 |
| | (2) سنيل گنگوپاڌايبه | پيو ڪو | 116 |
| | | سچو سچ | 117 |
| | (3) رابن سر | پڄاڻي | 118 |
| | (4) سڪانت پتاچاربه | هڪ ڪڪڙ جي ڪهاڻي | 119 |
| | (5) لوڪنات پتاچاربه | ڪوٽا پوءِ پلي اچي! | 121 |
| | (6) رابندر نات تشگور | پهرئين ڏينهن جو سچ | 122 |

| نمبر | ٻولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|---------------------------------------|------------------------------------|------|
| 7 | تاهل (ڀارت) (1) ٿيرو ميو - ميٿا | اُڏاسين جا گل | 123 |
| | | پهريون پيار | 123 |
| | | اُڏاسيءَ جا گيت | 123 |
| | | هوا جي زبان ڄاڻون ٿا | 124 |
| | | او آڱريون! | 124 |
| | (2) وڪرمادتين | مان ڇا ٿو ڪري سگهان! | 125 |
| | (3) شان مڱسڻيه | پيت کان پُڇ | 128 |
| | | خوش قسمت | 128 |
| | | محبت جو نظم | 129 |
| 8 | تيليگو (ڀارت) (1) اسماعيل | منهنجي زال | 131 |
| | (2) ڪي - گوداوي سرما | لفظ | 132 |
| 9 | ترڪي (ترڪي) (1) فاروق نافذ ڪنملييل | مسافر ۽ گاڏي وارو | 133 |
| | (2) ناظم حڪمت | اڃ آچر آهي | 135 |
| | (3) جاهيت ڪلبي | پهريون اڌ | 137 |
| | (4) نيسيپ فاضل ڪسا ڪوريڪ | ريلوي اسٽيشن | 138 |
| | | اڪيون | 138 |
| | (5) گولتين آڪن | جيڪي اوچائين تي رهن ٿا | 139 |
| 10 | پنجابي (ڀارت) (1) امرتا پريتم | هلو ته ويران جسم ٻائيءَ تي وڃايون! | 141 |
| | | مَسچتو | 142 |
| | | هن منهنجي وجود کي ڇهيو...! | 144 |
| | | ڪُتو | 145 |
| | | ماڻ جي سازش | 147 |
| | | هڪ ملاقات | 147 |

| نمبر | ٻولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|----------------------------|-----------------------|------|
| | | ويراڳ | 148 |
| | (2) ترلوڪ سنگھ آنند | سفر کان پوءِ جو سفر | 149 |
| | (3) جگتار | پولار ۾ ڦليل هٿ | 150 |
| | (4) سرجيت ڀاتر | ڳالهه ٻوله | 152 |
| | (5) وير سنگھ | بڪاريءَ جو ڪشڪول | 154 |
| | (6) امريت ڪونڪي | هل ته گهر موٽي هلون | 155 |
| 11 | جرمن (جرمني) | | |
| | (1) ارنيسٽ ٽولر | جيئرن جي نالي | 158 |
| 12 | جاپاني (جاپان) | | |
| | (1) يوكيو مشيما | هڪ نظم جي پڇاڙي | 159 |
| 13 | چيڪ (چيڪ) | | |
| | (1) جولينس فيوچڪ | هڪ جيل ڊائري - هڪ نظم | 160 |
| 14 | ڊوگري (ڀارت) | | |
| | (1) پدما سچدير | تصوير | 162 |
| | | گناهه | 164 |
| | | هٿ جي گهڙي | 164 |
| | (2) متوڪر | آئينو | 166 |
| 15 | ڊنمش (ڊينمارڪ) | | |
| | (1) ايرڪ اسٽي نس | ڪاٽيڊرو | 168 |
| | | ڪالوني | 168 |
| | (2) ماريا گيا ڪوبو | زبان | 170 |
| | (3) جوزف سيمٽن ڪاٽر جونيئر | ۽ تون ڇا چوندين؟ | 172 |
| | (4) لينگسٽن هيوز | گبو | 173 |
| | | ڪاري چوڪريءَ جو گيت | 173 |

| نمبر | ٻولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|---|---|--|
| | (5) پاڻي مري (6) گلورياسي - اوڊن | آزادي مان ڪجهه به نه آهيان باغي | 174 176 178 |
| 16 | رومانياڻي (رومانيا) (1) پينجا من فيڊوٽيانو | هڪ سادو سوڌو گيت | 179 |
| 17 | راجسٿاني (ڀارت) (1) مٿي مٽوڪر (2) چندر پرڪاش ديول | وسنت وصيت | 181 185 |
| 18 | روسي (روس) (1) بورس پشٽرونڪ (2) نتاليا گورينيو سڪايا (3) بولت اوڪود زهرا (4) اولگا برگالٽز (5) ولاد مير ماياڪووسڪي (6) ڪانسٽنٽن ونشينڪن | جدائي معاف ڪج ڦوڪڻ آڏامي ويو گيت ڏانهن مان پيار ڪريان ٿو پاڻ چپ پوءِ ڳائيندا زندگيءَ جو گيت! واپسي محبت جي پڇاڻي پڙاڏو اچو ڀائرو! دوست جي نالي هڪ ٻيو نظم دشمن ڏانهن | 187 189 190 191 192 192 193 195 196 198 199 201 201 202 |
| 19 | فارسي (ايران) (1) فروغ فرخزاد | راتاهو | 203 |

| نمبر | پلي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|--|---|--|
| 20 | ڪوريائي (ڪوريا) (1) يوچي-هوان (2) يڪ - سا | گل چوتي | 205 206 |
| 21 | گجراتي (ڀارت) (1) سریش جوشي (2) جينت پانڪ (3) جھينا پائي ڊيسائي | هڪ ٻه تي چار هڪ شاعر جو وصيت نامو لاش ڌيءَ جي وهانءَ کان پوءِ گھر ۾ زمين تي ڇت | 207 208 209 209 210 212 212 214 |
| 22 | عربي (1) نامعلوم (مصر) (2) محمود درويش (فلسطين) (3) بلند حيدري (عراق) | جيون ڍاڻو ماڻهو هڪ عرب چوڪريءَ جو سوال ويراني ايمان | 215 216 217 219 |
| 23 | مراڻي (ڀارت) (1) ونڊا ڪرانڊيڪر | اونداھين جي پاڙي ۾ مون ڪجهه ڏٺو آھي تون ۽ مان ڊوڙون ٿا غدار | 221 221 223 226 |
| 24 | هندي (ڀارت) (1) ماتا چرڻ مشر (2) اشوڪ باجپني | انٻ رڳو گلن کي خبر آهي ڌرتي لکي ٿي ڌرتيءَ کي پريم جي جڳھ (1) | 228 230 230 231 |

| نمبر | پولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|----------------------|---------------------------------|------|
| | | پرير جي جڳهه (2) | 232 |
| | | پر هڪ دري ته کليل رهڻ | 232 |
| | | گهرجي | |
| | (3) پيگوت راوت | پڪڙڻ جو سُڪ | 234 |
| | | ٻُٽو! | 236 |
| | (4) پنڪج سنگهه | آخري ڪٿا | 239 |
| | | هوا ڪٿي آهي؟ | 240 |
| | | مستقبل | 243 |
| | | تيليفون | 243 |
| | | چار | 244 |
| | | مان ايندس | 245 |
| | | آهڻون آس پاس | 246 |
| | | ديوتائن جو سڀنو | 247 |
| | | راج ڌانيءَ ۾ پنهنجي هڪ جنم | 248 |
| | | ڏينهن تي | |
| | | مان توکي نه لکندس | 249 |
| | | جنهن ڏينهن مان گهر مان هليو هئس | 250 |
| | (5) اِبار ريي | مان چئن سان مري به نه سگهيس! | 252 |
| | (6) پدم ڌر ترپاني | اچن ڪبوترن جا ڏڪان | 254 |
| | (7) ليلاڌر جڳوڙي | زبان ڪُشي | 256 |
| | (8) چندرڪانت ديوتالي | ۽ اڃا تون مون کان پڇين ٿو! | 262 |
| | (9) اروڻ سيدول | ٽڪرا ٽڪرا زندگي! | 264 |
| | | صبح- ٻپهري- رات | 264 |
| | (10) جڳديش چترويدي | ۽ هاڻي ...! | 266 |
| | (11) ڀلديو وڻشي | گهر، نفرت ۽ مقدر! | 267 |
| | | اسڪول | 267 |
| | (12) هريش پانڪ | سوال | 269 |
| | (13) ڪيدارنات ڪومل | شاعر اڃا جيئرو آهي | 271 |
| | (14) گنگا پرساد وِمل | نسل ڪشيءَ جو پڌرنامو! | 273 |

| نمبر | پولي / شاعر / ملڪ | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|--------------------------|----------------------------------|------|
| | (15) شري ڪانت ورما | جلسه گھر | 274 |
| | (16) سرويشور ديال سڪسينا | نيريون جھر ڪيون | 279 |
| | | بگھڙ (1) (2) (3) | 279 |
| | | ڳاڙهي سائيڪل | 281 |
| | | هڪ نئين اُج | 282 |
| | | نقشو | 284 |
| | (17) وِمل ڪمار | مان اُنهيءَ عورت اڳيان جھڪان ٿو! | 285 |
| | | هِن ئي هنڌ | 286 |
| | (18) منگليش ڊبرال | بابا جي تصوير | 290 |
| | | ڏاڏي جي تصوير | 291 |
| | (19) وشونات ترپائي | مون هڪ ڪوٽالڪي آهي! | 293 |
| | (20) وشونات پرساد تيواري | ڪتاب | 294 |
| | | سُڪ | 296 |
| | (21) وشوناگر | سوار ڪير هو؟ | 298 |
| | | رنگ به ته هڪ حقيقت آهي | 298 |
| | | وڻ | 298 |
| | | زال- مڙس | 299 |
| | | پنهنجو رام | 299 |
| | (22) اسد زبدي | مون کي ويساهه آهي | 301 |
| | | سائيڪل | 302 |
| | | سنگيت ۾ رهندي | 304 |
| | | صبح جي دعا | 305 |
| | | 1965ع | 305 |
| | | تھذيب | 305 |
| | | دوزخ جي باري ۾! | 306 |
| | | بهر حال هي گھر آهي | 307 |
| | | پينرون | 308 |
| | | نامراد عورت | 311 |
| | (23) گگن گِل | هڪ اڻ ڄاڻل ڀار جو مرثيو | 313 |

| نمبر | شاعر | نظم جو عنوان | صفحو |
|------|---|---|--------------------------|
| 25 | هنڱريائي (هنڱري) (1) آتيلايوسف (2) شانڊور پٽتوفي (3) رادنوتي مڪلوش | هڪ نظم جي پڇاڙي اي سموري دنيا جي آزادي! هڪ وياڪل گهڙي | 316 317 319 |
| 26 | يوناني (يونان) (1) ايڊي پولس (2) لوسي لئيس | نانگ ڪوڙا مائو سبب خريداري | 321 322 322 322 |

ڪوتا ڦلواڙيءَ جي صورت ۾

ادبي ڪيتر ۾ مختلف صنفن تي گهڻو ڪجهه لکيو ويو آهي. انهن صنفن مان هر هڪ صنف تي جيڪڏهن ڪم ڪجي ته اهو هڪ اُپسمنڊ بنجي پوندو. سوال آهي ته اها صنف هڪ علائقي کان ٻئي علائقي، هڪ ملڪ کان ٻئي ملڪ ۽ هڪ کنڊ کان ٻئي کنڊ تائين ڇا ماڻهو جن جي ٻولي، ريتيون، رسمون ۽ رهڻيون ڪهڻيون مختلف آهن، انهيءَ کي ڪيئن ٿا سمجهي سگهن؟ ته انهيءَ جو حل انهن لکڻين کي ترجمو ڪري پوءِ ئي هڪ هنڌ کان ٻئي هنڌ جي ماڻهن جي شعور ۾ واڌارو ڪرڻ سان گڏ انهيءَ شعور کي ڀيٽي سگهڻ ۾ آهي. مطلب ته ترجمو ڪندڙ ٻنهي شعور رکندڙ (ادنيٰ ۽ اعليٰ) جي وچ ۾ هڪ ڀُل جي حيثيت رکي ٿو. انهيءَ ڀُل جو ڪردار سائين ولي رام ولپ خوب نڀايو آهي. جنهن جو ثبوت سندس هي مجموعو ”ڪوتا - ڦلواڙي“ آهي.

سائين ولي رام ولپ جيڪو ڪنهن به تعارف جو محتاج ناهي، نه صرف سنڌي ادب جي تاريخ ۾ ترجمي نگار جي حيثيت ۾ بلڪه ڪهاڻي

۽ شاعريءَ ۾ بہ مڃتا ماڻي آهي. پاڻ هن مجموعي ”ڪوتا - ڦلواڙي“ ۾ دنيا جي تقريباً 19 ملڪن جي 112 شاعرن جي احساسن کي چُهيو آهي، جيڪي پنجن کنڊن ۾ ڦهليل 26 ٻولين مان ترجمو ڪري سنڌي ويس پهرايو اٿس. جنهن جي ڊيگهه 324 صفحن تي پهتي آهي. هن سڄي مجموعي ۾ خيال، تخليق جي چونڊ ۽ بيهڪ جي حساب سان پنهنجي معيار جو چاهاءُ مٿيو آهي.

آصف فرخي پنهنجي مهاڳ ۾ لکي ٿو ته، ”ولي رام وٺي انهن ماڻهن مان آهي، جيڪي سڄي همار قلم هٿ ۾ جهلي رکندا آهن، جن جي ڪري اڃا به ادب جي ساڪ قائم آهي.“

اهڙيءَ طرح سائين محمد ابراهيم جويو، جيڪو سنڌي ادب ۾ هڪ ذميوار ۽ مان مرتبي واري حيثيت جو مالڪ آهي، پنهنجي ليک ۾ لکي ٿو ته، ”سندس هن اعليٰ انتخاب ۽ ترجمي تي کين ’مبارڪ، صد مبارڪ‘ چوڻ کان رهي نه سگهيس.“

ولي رام وٺي ڪيڏي نه خوبصورت لفظن ۾ لکي ٿو ته، ”هڪ ڪوتا، هڪ اهڙو واقعو هوندو آهي، جنهن جهڙو اڳ ۾ ڪڏهن به نه ٿيو هوندو آهي، پر ڪوتا جي واقعي جي ٿيڻ جي عمل مان جنهن کي گذرڻو پوندو آهي، اُهي لفظ آهن - لفظ، جيڪي هڪ نرالي اندروني دٻاءُ ۽ اُچل جي هڪ خاص قوت جو ۽ ماضيءَ جي نامعلوم واقعن جي اظهار جو ۽ جملن جي هڪ ترڪيبي روايت جو ۽ ٻين ڪيترن ئي ڪوڙين - مٿين ڳالهين جو ذمو کڻندا آهن.“

سچ ته سائين ولي رام ”ڪوتا - ڦلواڙي“ جي صورت ۾ ادبي ڳڻڪو ڏئي، سنڌي شاعريءَ ۾ پنهنجو ڳاٺ اُوچو ڪيو آهي، جيڪو يقيناً پنهنجي منفرد جڳهه والاريندو، اها ڳالهه هاڻ پڙهندڙ تي ڇڏيل آهي ته اُهي ڪهڙي موت ٿا ڏين. اسان پنهنجي اداري طرفان هن مجموعي کي شايع ڪري فخر ۽ سرهائي محسوس ڪريون ٿا. اميد ته ڪاوش سڦل ويندي.

— موهن مدهوش

حيدرآباد، سنڌ

27 جنوري 2006ع

مهاڳ

ولي رام وليپ جا ترجما: نئين سفر جو استعارو

هيءَ رڳو هڪ ڪتاب ناهي، جنهن جا هتان هتان اڃا سڃايا صفحا ورائجن. هيءَ ڪتاب مون لاءِ ائين آهي جيئن ڪو هلڻ لاءِ چوي ۽ بس اُتي هلي پئجي. اها همسفرِيءَ لاءِ دعوت به ناهي، جيڪا گڏجي هلڻ جي احساس سان شروع ٿيندي آهي ۽ وڪ سان وڪ ملائي رکڻ جو جبر بنجي پوندي آهي، جيڪو خود ڪنهن عذاب کان گهٽ ناهي. هن مجموعي ۾ هڪ موجودگي ضرور آهي، جنهن جي باري ۾ اسان کي پهرئين ئي صفحي تي مترجم جي نالي مان سڌ پئجي وڃي ٿي. هو ڪٿي آس پاس رهي ٿو. هو نه مٿي تي سوار ٿئي ٿو ۽ نه ئي مسلسل راءِ زنيءَ سان بيزار ڪري ٿو. هو هڪ آواز آهي، بلڪل نئون پر ڄاتل سڃاتل. اهو آواز ست سمنڊ پار کان، جبلن ۽ ماڻھن جي پريئين طرف کان، قسمن قسمن سرحدون پار ڪري، بلڪل ڄاتل سڃاتل لهجي ۾ مخاطب ٿئي ٿو، ڇڻ هتان ڪٿان تمام ويجهڙائيءَ کان آيو هجي. اهڙي آواز جي سڌ تي جيڪڏهن دل ويڇاري نه هلي ته ڇا ڪري؟ انهيءَ ڪري هن ڪتاب جي مسودي جا ورق هٿ ۾ کڻي مان به هلي پوان ٿو.

هيءَ ڪتاب ناهي، سفر جو اشارو آهي، پر انهيءَ جي سڌ به آهستي آهستي پوي ٿي. مان هلي رهيو آهيان - نظر نظر، قدم قدم، لمحو لمحو، صفحو صفحو. هاڻي شهر منهنجي پٺيان رهندو پيو وڃي. بي ترتيب عمارتون آسمان جو ايترو حصو ڪٽي ڇڏين ٿيون، جيڪو مون کان پري آهي. آسمان جڏهن وسامڻ لڳي ٿو ته اهي پاڇولي ۾ تبديل ٿي وڃن ٿيون. رنگ لٿل پٽيون، دريون، ٽي وي اينٽينائون.... شهر جي اسڪاءِ لائين ڏٺن ۾ ٻڌندي پئي وڃي. هاڻي شهر منهنجي پٺيان آهي ۽ سمنڊ منهنجي سامهون. ريتي پيرن کي چڪي وٺي ٿي ۽ هڪ وڪ به ڪٿي نه ٿي سگهجي ۽ جڏهن پير زمين سان لڳن ٿا ته پاڻي اُڀري اچي ٿو، پيرن جا نشان آلي ريتيءَ تي اُڀريل آهن. سمنڊ منهنجي سامهون آهي - لازوال، اڻ ڪٽ، گجگوڙ ڪندڙ، نير جهڙو، سموري دنيا جي شاعريءَ

ڪي، اُتندڙ ۽ ڦهلجندڙ لهرن وانگر، پنهنجي اندر ۾ سميتي. هن سمنڊ جي سڌ تي ڊپ به ته لڳي ٿو. هڪ وڌيڪ وڪ اڳيان کنيو ته پوءِ ان جو ڪو چيڙو ناهي، ڪا انتها ناهي. مون کي خبر آهي ته جيڪو سمنڊ ۾ هڪ ڀيرو پنهنجا پير ڄمائي نه سگهيو ته هو سندس جسم کي انهيءَ وقت واپس ڪندو آهي، جڏهن اهو لاش بنجي ويندو آهي — لاش جيڪو ترندو مٿاڇري تي ايندو آهي، سمنڊ هاڻي کيس ٻاهر اوڳاچي ڇڏيو آهي.

جبل جي چوٽيءَ پويان سج لهي رهيو آهي ۽ هڪ پڪيءَ جو پاڇو ان جي سامهون اچي ويو آهي. ڇا اُن عظيم سمنڊ جي سامهونءَ کان واپس وڃڻ گهرجي؟ اڃا سج نه لٿو آهي ۽ سمنڊ پير نه جهليا آهن. اڃا واپسيءَ جو امڪان آهي. باقي شاعري آئنده — واپس اُن طرف جتي شهر آهي ۽ شهر ۾ زندگيءَ جون وڪريل ڪهاڻيون. گرم، آلي ريتيءَ تي مان پين جي زور تي مڙي وڃان ٿو ۽ پين جي نشانن ۾ پاڻي پرجندي ڏسان ٿو، تڏهن مون کي ريتيءَ ۾ ڊهيل سڀ نظر اچي ٿي. اُن جي ناهموار، اچي مٿاڇري تي ريتي چنڀريل آهي. پيرن جي نشانن ۾ پريل پاڻي اُن کي صاف ڪرڻ لاءِ ڪافي آهي. اُن جي ڌوئل مٿاڇري تي مان ڪن رکي ڇڏيان ٿو — اُن ۾ سمنڊ ڳالهائيندي ٻڌڻ ۾ ايندو، سمورو سمنڊ! سائين ولي رام ولپ 'ڦلواڙيءَ' جي زمين هموار ڪري، فقط گل ٿي نه ٿيڙيا آهن، پر هڪ سڀ به جوڙي آهي، جنهن ۾ سموري دنيا جي شاعريءَ جو حسن سمنڊ جو آواز بڻجي گڏ ٿي آيو آهي — هڪ سڀ ۽ ايڏي وسعت.

'ڪوٽا ڦلواڙيءَ' جو نالو، ولي رام ولپ شايد ان ڪري چونڊيو آهي جو هو غالب وانگر بهار جي رنگن جي اقرار جو ڦاٽل آهي ۽ سڄي دنيا اڳيان اعلان ڪرڻ چاهي ٿو:

Let a hundred flowers bloom!

نعرن جي بي اثر هئڻ واري هن بي فيض دؤر ۾ اها سادي سودي ڳالهه ڪيڏي نه ڏلڪش ۽ میناج پري لڳي ٿي. سهڻ (Tolerance) ۽ اجتماعيت (Pluralism) جي پيغام جي ضرورت اڄ جي زخمي انسان کي به آهي ته مسلسل دوڪي جي شڪار ٿيل هن دنيا کي به. پر جيڪڏهن فقط ايتري ئي ڳالهه هجي ها. ته اهو سياسي منشور ٿي وڃي ها. ولي رام ولپ ته شاعريءَ جي

شعور ڏانهن سفر ڪري ٿو۔ شاعري جيڪا حواس ۽ احساسن جي دربن کي کولي وائڪو ڪري شعور کي وسعت ڏي ٿي. تنهنڪري ئي ته هيءُ ڪتاب کان وڌيڪ سفر جو سڏ آهي. هيءُ سفر جي دعوت جو مڪمل اهماام آهي.

ولي رام ولپ اُنهن ماڻهن مان آهي، جيڪي سڄي ڄمار قلم هٿ ۾ جهلي رکندا آهن. هُن ڪهاڻيون به لکيون آهن ۽ نظم به، پر هُو ڪنهن خاص صنف سان پائيند رهي ۽ وفاداريءَ کي پنهنجي راهه سمجھي ويهڻ وارن مان نه آهي. هُو صنفن ۽ اسلوبن کان مٿي ڀرو هڪ اهڙو ليکڪ آهي، جنهن کي صحيح معنيٰ ۾ Man of Letters يا اهلِ قلم چئي سگهجي ٿو۔ جيتوڻيڪ مان اهو چوڻ کان به ڊڄان ٿو، چوڄو اسان اهلِ قلم ۽ دانشور جهڙن لفظن کي به غير ضروري جڳهين تي استعمال ڪري خراب ڪري ڇڏيو آهي. بهرحال ولي رام ولپ اهڙن ورلي چند ماڻهن مان آهي، جن جي ڪري اڃا به ادب جي ساک قائم آهي. سندس نظمن کان وڌيڪ مون کي سندس ڪهاڻيون ذڪر لائق لڳنديون آهن. انهن چند ڪهاڻين ۾ سادگي پيريل نظر اچي ٿي ۽ بياني ٽيڪنڪ جي هنرمندي لفظن مان ليئو پائيندي محسوس ٿئي ٿي. اهي چند ڪهاڻيون ڌيان سان پڙهڻ جي تقاضا ڪن ٿيون ۽ پنهنجي انهيءَ افسانوي سفر جي نقطهءِ عروج تي سائين ولي رام ڏاڍي احتياط سان پڙهندڙ کي اُنهن ليڪن جي سامهون آڻي بيهارن ٿو، جن کي اورانگهيو نه ويو، اورانگهڻ ممڪن نه ٿيو. انهيءَ ليڪن کي اورانگهڻ لاءِ هُو تخليقي ٽپو ڏي ٿو ته پنهنجن ترجمن ۾. سندس نظمن کان وڌيڪ شاعري ته سندس ترجمن ۾ موجود آهي. ممڪن آهي ته ڪو نقاد چئي ڇڏي ته اهي نظم رت جي گهٽتائيءَ جو شڪار آهن۔ اهو رت جيڪو دل ۾ آڱريون ٻوڙڻ سان لفظن ۽ ليڪن ۾ رنگ ڀرڻ لڳندو آهي. مون کي ياد اچي ٿو ته هڪ دفعي ڳالهه ٻولھ دوران ولي رام ولپ مون کي چيو هو ته ترجمو ڪندڙ ادب جي برادريءَ جا اهي ماڻهو آهن، جيڪي پنهنجي رت جو عطيو ڏين ٿا. اها ڳالهه تنهن وقت به مون کي دلچسپ لڳي هئي. هاڻي سوچيان ٿو ته زندگيءَ جي هر شعبي وانگر، اسان جي ادب ۾ به پيشه ور رت فروش داخل ٿي ويا آهن، جن جو رت گندو به آهي ته بيمارين جو گهر به. ڇا ڪو اهڙو طريقو ناهي جو اُنهن Chronic روگين جي به Screening ٿي سگهي! رت به اهڙن ماڻهن جو راس ايندو

آهي، جيڪي پاڻ صحتمند هجن. اهڙيءَ طرح ترجمي جو فرض اهوئي لکندڙ بهتر نموني ادا ڪري سگهي ٿو، جيڪو تخليق جي سخت معيار تي پورو لهندو هجي. ولي رام ولپ ان ڪسوٽيءَ تي به پورو آهي.

ولي رام ولپ جو طبعزاد ڪم تعداد ۾ گهٽ آهي، پر معيار ۾ ڪنهن به طرح گهٽ نه آهي. هن ترجمي سان جهڙي طرح ناتو جوڙي رکيو آهي، اهو هن دؤر ۾ هڪ اهم تخليقي رويي جو وري مثال آهي. هن پنهنجي تخليقي دلچسپين جي محور، نظم ۽ ڪهاڻيءَ کي ترجمي جي لڳن جو به مرڪز ٺاهيو آهي. سندس چونڊ ڪهاڻين جي ترجمن جا مجموعا — ”نيٺ تارا (2003)“ ۽ ”بهشت ۽ دوزخ (2004)“ هاڻي ٿورو عرصو اڳ ئي شايع ٿيا آهن ۽ انهن ڪتابن به انڪشاف جي دريءَ کي وائڪو ڪيو آهي تنهن ڪري ڪجهه اهڙيون ڪهاڻيون پڙهڻ لاءِ مليون، جيڪي ان کان پهرئين نه انگريزيءَ ۾ پڙهڻ جو اتفاق ٿيو نه ڪي اردوءَ ۾. هن سرويٽور ديال سڪسينا جا به ناوليت ”سويا هوا جل“ ۽ ”پاگل ڪٿون ڪا مسيحا“ هنديءَ مان اردوءَ ۾ ترجمو ڪيا آهن ۽ خوشقسمتيءَ سان مون کي انهن جو مسودو پڙهڻ لاءِ مليو، جنهن مان مون کي (هڪ دفعو بيهڻ) اندازو ٿيو ته سندس پسند جو معيار ڪيڏو نه عمدو ۽ معتبر آهي ۽ اسلوب تي پڪڙ ڪيڏي نه فنڪارانه آهي. سٺي مترجم لاءِ اهي ئي به شرط بنيادي آهن ۽ اهي ئي شرط سخت. ولي رام ولپ ان معيار کي هيٺ ڪرڻ نه ٿو ڏئي. پر ڪڏهن ڪڏهن منهنجي دل چوندِي آهي ته کيس پنهنجي اظهار لاءِ وڌيڪ وسعت ملي ها ته ڪيڏو نه سنو ٿئي ها.

اينٽن ته هن البير ڪاميو جي ناول ”The Outsider“ کي سنڌيءَ ۾ ترجمو ڪيو آهي ۽ قرة العين حيدر جي ”آخر شب ڪي همسفر“ ۽ ”سيٽا هرڻ“ کي به، پر شايد سندس تخليقي لڳن، چادر تي ان کان وڌيڪ پير ڊگهيڙ جي گنجائش نه پئي رکي. ڪيڏو نه سنو ٿئي ها جو ڪو باهمٽ ناشر يا سرڪاري ادارو کيس روزيءَ روتي جي ڪشمڪش کان ڪجهه ڏينهن لاءِ آزاد ڪري ڇڏي ها ۽ کيس ”اينا ڪرينينا“ (Anna Karenina) جهڙي ناول جي ترجمي تي جني وڃڻ لاءِ چوي ها، جنهن جو هو ارادو ئي ڪري رهجي ويو ۽ چند صفحن کان اڳيان نه وڌي سگهيو، پر اسان جي سرڪاري ادارن کي قابل جوهر جي شناخت ۽

فروغ جي ضرورت ئي ڪهڙي آهي؟ اُهي خوشامد جي مشينريءَ لاءِ تيل جون ڪپيون تيار ڪندا رهن ٿا، درباري وفادارين جي خيالي صورتن ۾ رنگ پريندا رهن ٿا ۽ ولي رام ولپ جيڪو به ڪيو، اُهو پنهنجي ٻانهن جي ٻَل تي ڪيو. سندس اهو اعزاز ڇا گهٽ آهي!

ولي رام ولپ جي ادبي واقفيت ۽ سٺين تحريرن لاءِ جيتري قدر شناسائيءَ سان سندس ترجما سڃاتا وڃن ٿا، ان جو بياني ثبوت ڪتابي سلسلي ”آرسي“ ۾ به ملي ٿو، جنهن کي هن مرحوم ظفر حسن سان ملي مرتب ڪيو. ”آرسيءَ“ جا ڪجهه ئي شمارا شايع ٿيا ۽ اُن کان پوءِ اهو سلسلو بند ٿي ويو— هڪ آزاد مزاج پرچو ڪاروباري دنيا جي اڳيان ٻيو ڪيترو نقصان پري ها؟ پر انهن چند شمارن ئي پنهنجو ڏاڪو ڄمايو جو مرڪزي وهڪري (Mainstream) ۾ رهندي، نون اديبن ۽ تازن اسلوبن جو تعارف ڪرائڻ خود ۾ هڪ تخليقي عمل آهي ۽ اهو رسالو انهيءَ روش تي ڪاربند رهيو. معيار کي برقرار رکندي، خيالن جي تازگي ۽ مختلف اسلوبن ۽ نظرين جي قبوليت ۽ گنجائش جهڙيون خوبيون هن پرچي جو خاص مزاج هو ۽ اهو پيش قدم ڪتابي سلسلو هاڻي به مون کي هڪ آئيڊيل وانگر محسوس ٿيندو آهي، جنهن تائين پهچڻ جي خواهش دل ۾ آهي. (اڄڪلهه جي انهن پرچن وانگر نه، جن کي ڏسي شعر جي پيءُ مصرع ياد ايندي آهي ته ’زور ڪتنا بازوئي قاتل مين هه!‘)

مختلف اسلوبن لاءِ قبوليت، ادبي واقفيت ۽ معيار تي برقرار رهڻ— ”آرسيءَ“ جو اهو مزاج ولي رام ولپ جي ترجمي نگاريءَ سان متعين نه ته متاثر ته ضرور ٿيو هوندو. انهيءَ ڪم جي اهميت کي هڪ وسيع ترادبي تناظر ۾ رکي ڏسڻ ۽ پرکڻ جي هونئن به ضرورت آهي، جو اسان ترجمي کي ٻئي نمبر جو ڪم سمجهي رکيو آهي. ڪجهه حلقن ۾ اهو خيال به ڏسڻ ۾ آيو آهي ته ترجمو تمام آسان ڪم آهي ۽ اهو ڪم اهڙو شخص سرانجام ڏيندو آهي، جيڪو تخليق جو بار کڻڻ جي لائق نه هوندو آهي. پر ٿورو سوچيو ته سهي جيڪو پاڻ صحتمند نه هوندو، اُن جو رت ڪهڙي ڪم جو؟ خاص طور تي شاعريءَ جي ترجمي جي باري ۾ ڪجهه وڌيڪ شڪ جو اظهار ڪيو ويندو آهي. ڪنهن شاعريءَ جي تعريف به انهن لفظن ۾ ڪئي آهي ته شاعري اها شيءِ آهي، جيڪا ترجمي ۾،

ٻاهر رهجي ويندي آهي — يعني ترجمو نه ٿيو ڇاڻي ٿي ويئي، جيڪڏهن ان مان گذريو ته کير الڳ ۽ پاڻي الڳ ٿي ويندو. جيڪڏهن ايئن هجي ها ته اسان جي واقفيت جو دائرو ڪيڏو نه محدود ۽ سڪڙيل هجي ها، پوءِ يورپ جو ادب هومر ۽ ورجل ذريعي پنهنجو رستو نه وٺي ها ۽ نه ئي اقبال کي شيڪسپيئر سان مخاطب ٿي هي خراج تحسین پيش ڪرڻ جو موقعو ملي ها ته ”دل انسان ڪو تيرا حسنِ ڪلام آئينه“ ۽ نه وري غالب کي ياد ڪندي گوڻي جو هي حوالو ڏيڻ جو موقعو ملي ها ته ”گلشنِ ويڙهه مين تيرا هر نوا خوابيده هئ.“ اڄڻ ڊلي گلشنِ ويڙهه سان هم ڪلام پلا ٿئي ها ته ڪيئن؟ ثقافتي ۽ تهذيبي Encounter جيڪڏهن ممڪن آهي ته ترجمي جي ڪري.

ترجمي جي باري ۾ ڪنهن جو ظريفيائو قول آهي (اسان جي تنقيد اڃا تجزين جي بدران ظريفيائن جملن جي آڌار تي هلي رهي آهي!) ته ترجمو خوبصورت عورت وانگر آهي ۽ جيڪڏهن خوبصورت هوندو ته باوفا نه هوندو. اهڙي طرح مترجمن کي غدار به چيو ويو آهي. انهيءَ جملي جو سڀني کان سٺو جواب جيڪو منهنجي نظر مان گذريو آهي، اهو ظاهر آهي ته هڪ عورت ئي ڏٺو آهي: ”انهيءَ ڳالهه سان ترجمي يا عورت جي باري ۾ گهٽ ۽ مردن جي خوداعتماديءَ جي باري ۾ وڌيڪ خبر پوي ٿي...“

اهو جواب ڏنو آهي انٽر ڊيوسين، جيڪا دهليءَ جي هڪ رسالي ”The Little Magazine“ جي ايڊيٽر آهي. انٽر سان ملڻ جو مون کي موقعو مليو ته اندازو ٿيو ته کيس انهيءَ ڳالهه جو چوڀول بلڪل پسند ناهي ته هوءَ پروفيسر امريت سين (جنهن جي ڪلاس ۾ ويهڻ جو اعزاز مون کي حاصل آهي) ۽ بنگالي ليکڪا نبتيا ديوسين جي ڌيءَ آهي. ان جي بدران کيس پنهنجي حيثيت تي اصرار آهي. اديب ماءُ پيءُ جو اولاد مون کي پنهنجي حوالي سان هڪ ٿيڻو آئينو لڳندا آهن، تنهنڪري مان سندن صحافتي لکڻيون ڳولهي ڳولهي پڙهندو آهيان. دنيا جي سڀني کان وڌيڪ ترجمو نه ٿيڻ جو ڳڻ ڏهن لفظن جي فهرست ٺاهيندي هوءَ جوابي اعتراض ڪري ٿي ته ”نه هر خوبصورت عورت بيوفا ٿيندي آهي ۽ نه ئي هر بيوفا عورت خوبصورت“. انهيءَ جي باوجود جيڪي ماڻهو عورت يا ترجمي جي باري ۾ انهيءَ رويي تي اصرار ڪندا رهن،

انهن لاءِ انتره جي هيءَ تحرير ڏاڍي تڪي آهي:

"Those who hold this belief are either fundamentalists linguists or have turned their clinical deprivation of other literatures into a philosophy. Either way, we must acknowledge their wisdom and move on to lesser mortals who may look beyond their own language at the wider world."

ظاهر آهي ته اهڙن ئي ماڻهن جي صف ۾ ولي رام وليم به اچي ٿو ۽ سندس نالي جي شموليت کان پوءِ ڇا ڪو ماڻهيءَ جو لال ترجمان کي Lesser mortals چئي سگهي ٿو؟

هندستان جي بيحد سرجيندڙ سهيوڳي شاعر دليپ چٽري ترجمي کي اوتروئي ڏکيو چيو آهي، جيترو خود شاعريءَ کي. اهو نڪتو به خود اهم آهي - ڏکيو، پر تمام ضروري. هندستان جهڙي گهڻين زبانن (Polyglot) واري ملڪ لاءِ زبانن جي وچ ۾ حاصل ڪرڻ ۽ فائدو وٺڻ جو هڪ اهم ذريعو ترجمو ئي آهي ۽ اهو ناممڪن آهي ته اوهان ڪنهن به هڪ زبان جي خبري ۾ در بند ڪري ويٺا رهو. پنهنجي زندگيءَ جي الائجي ڪيترن شعبن ۾ اسان هڪ زبان جي سرحدن مان نڪري لاشعوري طور تي ٻي زبان جي حدن ۾ داخل ٿي ويندا آهيون. افسوس ته انهيءَ ڳالهه جو آهي ته انهيءَ غير شعوري لساني تبديليءَ جي عمل سان اسين به منهن مقابل ٿيندا آهيون، پر اسان پاڪستان جي گهڻين زبانن واري ملڪ جي حيثيت سان گهڻو ڪري پاسو ڪندا آهيون. زبان کي ڪال ڪوٺري نٿو بنائي سگهجي. اها ڳالهه ٻين لاءِ به خراب آهي ته اسان پاڻ لاءِ به.

'جيڏانهن ڪنڌ، تيڏانهن پنڌ' چوڻي مطابق هيڏانهن هوڏانهن نه ڏسي سگهندڙ انهيءَ يڪسانيت ۽ يڪرنگي جي زندان ۾ ترجمو دري کولي رکڻ جو عمل چاهي ڪيترو به ڏکيو هجي، انهيءَ ۾ هار کائي ڇڏي ڏيڻ، ممڪن ناهي. انتره ديوسين جي انهيءَ مضمون مطابق:

But we cannot give up. Because the less access we have to other cultures, the more monolithic our society becomes. Nothing is untranslatable, and nothing translates perfectly. We deal with approximations, we grope for common ground to understand the other, to make ourselves understood. Just the way we live life...

تنهنڪري ترجمو هن دور ۾ جيئن جو هڪ ڏانءُ آهي، ۽ اها ڳالهه وليم

رام ولي کان بهتر پيو ڪير ٿو ٻڌائي سگهي؟ اسان شايد ترجمي جو اهو تمام شائسته، مهذب پر ڏيمو آواز ٻڌڻ نٿا چاهيون، انهيءَ ڪري اسان اهو طئه ڪري ڇڏيو آهي ته اسان Monolithic معاشرو ٿي رهنداسين ۽ انهيءَ ۾ اسان جي پلائي آهي - پلائيءَ جي عذاب تائين جسم ۽ زبان جي موت کان اڳ هڪ عذاب. انهيءَ کان پوءِ سڀ زبانون گونگيون. ڪنهن جا چپ آزاد رهندا؟ رڳو خالي جسم رهجي ويندو. عالمگيريت (Globalization) جي ڪيٽ واک (Catwalk) تي هڪ سپر ماڊل!

ٽيليويزن جي لهرن تي اهي جسم دنيا جي گهر گهر ۾ پهچي سگهن ٿا، ايترا متناسب جو چڻ Sculpted هجن، پر بي زبان ۽ گونگا! ڪوٽا جي هن ڦلواڙيءَ ۾، جيڪا ولي رام سائين لڳائي آهي، هڪ طرح جي سادگي آهي، اهڙي نمود و نمائش ناهي. دراصل سائين ولي رام Global ته آهي، پر Globalized ناهي. هوءَ سموري دنيا جي نظمن جي مطالعي دوران گل چونڊي ٿو ۽ سندس اها توڪري گلن سان ڀرجي ويئي. انهيءَ ۾ امريڪا ۽ انگلنڊ جا شاعر به آهن ته اسپين ۽ روس جا به. هن هندستان جي مختلف زبانن جي شاعريءَ مان به فيض ورتو آهي ته پاڪستان جي زبانن مان به. نظمن جي عنوانن ۽ شاعرن جي پسنديدگيءَ مان اندازو ٿئي ٿو ته سندس ادبي مزاج ڪهڙو آهي. کيس هڪ خاص انداز ۽ مزاج جي شاعري وڌيڪ پسند اچي ٿي. هن گهڻو ڪجهه انهيءَ سبڊگل ۾ گڏ ڪيو آهي، پر انهيءَ سان دل نٿي ڀرجي، بلڪ وڌيڪ ترجمي جي خواهش ٿئي ٿي ۽ خيال اچي ٿو ته جيڪڏهن هو مختلف انداز جي ٻين ڪجهه شاعرن وٽ پهچي ها ته هوند ڪيڏو نه سٺو ٿئي ها. مثال طور، اردوءَ جي سهيوڳي شاعرن مان هن ڏيڻ سان ساحل ۽ سعيدالدين جا ڪيترائي نظم ترجمو ڪيا آهن ۽ ٻن منفرد شاعرن کي سنڌي پڙهندڙن سان متعارف ڪرايو آهي، جن کي اڃا اردو حلقن ۾ به ايتري پذيرائي حاصل نه ٿي سگهي آهي، جنهن جا اهي مستحق آهن. پر جيڪڏهن افضال احمد سيد ۽ نسرين انجم پٽيءَ کي، چونڊ جي دائري ۾ شامل ڪري ها ته اردوءَ جي جديد روپن جي جوڳي نمائندگي ٿي سگهي ٿي. ممڪن آهي ته آئنده ڪڏهن هو پنهنجي چونڊ ۾ وڌيڪ نالن ۽ نظمن جو اضافو ڪري.

اظهار ۽ شعور جتي خانن ۾ ورهائجي بند ٿيڻ لڳندا آهن، اُتي ولي رام ولپ ليڪن کي اورانگهيو آهي ۽ سرحدن کي ٽوڙيو آهي. حدن کان انڪار ڪري وسعت حاصل ڪرڻ جي خواهش ۽ ڪوشش ولي رام ولپ جو اصل ڪمال آهي، جيڪو هن ڪتاب جي ترجمان مان چٽو پُٽو ڏسجي ٿو.

چوندا آهن ته ٻُڌندڙ کي ڪڪَ جو سهارو. اسان جي جديد دنيا ۾ ڪيترائي ماڻهو هڪ ڪڪَ کي پنهنجي سڃاڻپ بڻائي ان سان ئي چھڻيل رهندا آهن، ۽ ٻپ هوندو اٿن ته هٿ ڪڍندا ته ٻُڌي ويندا. هي سرحدن تي اصرار جي دنيا آهي. امريڪي نقاد ۽ لسانيات جي ماهر Michael Shapiro، جيڪو هيٺ پسند لائڻ جو وڏو مبلغ آهي، پنهنجي ڪتاب "The Sense of Form in Language and Literature" ۾ هڪ پورو مضمون سرحدن جي ادبي تصور تي لکيو آهي ۽ انهيءَ مضمون جي پهرئين صفحي تي ئي اهو لکي ڇڏيو اٿس:

"One very important thing about boundaries is that they are purely mental entities."

انهيءَ تي مون کي جرمنيءَ جي بيمثال ناول نگار ۽ شاعر Ingeborg

Baohman جي نظم "Of a Land, a River and Lakes" جون هي ٻه سٽون ياد اچن

ٿيون:

"Speak across borders

even if borders pass through very word."

هن دنيا جي هر هڪ لفظ کي سرحدن تار تار ڪري ڇڏيو آهي، پر ولي رام ولپ جا ترجما انهيءَ اُميد افزا طاقت جي فتح جا اعلان ناما آهن، جيڪي سرحد پار کان ڳالهائين ٿا. اهائي شاعري آهي، ۽ شاعريءَ جو ورود، هن عهد جو معجزو. يعني پير هنيو ته پاڻي نڪري آيو... ريتيءَ تي پيرن جي نشانن ۾ پاڻي ڇمڪي رهيو آهي ۽ شهر جي عمارتن کان پري، سمند اُس ۾ ڇمڪي رهيو آهي.

آصف فرخي

10 ڊسمبر 2004ع

ڪراچي

ڪوتائن جي ڪاڪ محل ۾

مترجم جا ويچار

اها دعويٰ قطعي نه اٿم ته مون کي دنيا جي مختلف ٻولين جي ڄاڻ آهي ۽ انهن ۾ لکيل ادب تائين سڌي رسائي ۽ First hand واقفيت آهي، پر جڏهن انگريزي، هندي ۽ اردوءَ ۾، جن جي عام رواجي ڄاڻ اٿم، ۽ ٻين ٻولين مان ترجمو ٿيل مَن کي ڇهندڙ ڪا ڪوتا، زندگيءَ جي وهڪري مان ڪنيل ڪا ڪهاڻي، سماج ۽ اُن جي حالتن جو پريور عڪس چٽيل ڪو ناول، يا ٻيو ڪو نثري ادب جو شاهڪار پڙهندو آهيان ته بروقت اُن کي پنهنجي ٻوليءَ جو ويس ڍڪائڻ جو خيال بي اختيار ڪر موڙي جاڳي پوندو آهي. پر پنهنجين مختلف محدودگين ۽ مجبورين سبب، رڳو اهو ڪجهه ترجمو ڪري سگهندو آهيان، جنهن ۾ وڌيڪ دلچسپي هوندي اٿم، يا اهو ترجمو ڪرڻ جو ڳو لڳندو آهي. انهيءَ عمل جي پسمنظر ۾ منهنجي طبعي لاڙي، ذهني ڳانڍاپي ۽ دل جي چٽي جو وڏو دخل هوندو آهي. انهيءَ ڪري ٻين ٻولين جا ڪيترائي اهم شاهڪار ۽ شهپارا مُٺ ۾ اچڻ کان رهجي ويندا آهن، جيڪي ٻولي ۽ ادب جي سرڪاري نيم سرڪاري، خانگي ادارن ۽ انفرادي اشاعت گهرن لاءِ به سواليه نشان بنيل آهن.

هن ’ڪوتا ڦلواڙي‘ ۾ شامل طرح طرح جي ڪوتائن جي پويان اثنا لاجي سهيڙڻ جي باقاعدي رٿابندي ۽ اُن لاءِ گهربل ٽيڪنيڪي ترتيب جي محنت شامل ناهي، ڇو جو مون پنهنجي هڪ ڊگهي عرصي تي ڦهليل ڪوتائن ۽ انهن جي مختلف مجموعن ۽ رسالن جي اڀياس دوران اهي ڪوتائون At random ترجمو ڪيون هيون، جيڪي هن مجموعي ۾ ڳاڻيٽي جي لحاظ کان 215 آهن ۽ دنيا جي 26 مختلف ٻولين جي 112 شاعرن جي 19 ملڪن سان لاڳاپيل آهن. ۽ دنيا جي نقشي تي پنجن کنڊن ۾ ڦهليل آهن. جيتوڻيڪ انهن ملڪن جي جاگرافي، تاريخ ۽ ڪلچر ڌار ڌار آهن؛ سندن ريتيون، رسمون، رواج ۽ روايتون مختلف آهن؛ انهيءَ لحاظ کان سندن سماجيات، اقتصاديات ۽

سياسيات جا پس منظر ۽ پيش منظر الڳ الڳ آهن؛ مختلف نفسياتي، سوچ ۽ فڪر جا مالڪ آهن، پر انهيءَ ڳالهه ۾ ڪوشڪ ناهي ته اُتان جي رهاڪن جي جذبن ۽ خواهشن جي شدت، ڏک سُڪ جون ڪيفيتون ۽ محبت ۽ نفرت جا عمل ۽ ردعمل هڪجهڙا آهن ۽ هڪجهڙي اثر سان دل کي چهن ٿا، جهوپو ڏين ٿا ۽ جهومائين ٿا. انهيءَ ڪري اسين سڀ ڌار ڌار ملڪن جا رهواسي هئڻ جي باوجود، هن دنيا جا رهندڙ هر وطن آهيون.

ادب ۾، ڪوتا يا شاعري هڪ اهڙي صنف آهي، جنهن جو سنئون سڌو واسطو انساني ذهن جي نهايت ئي نفيس ۽ نازڪ ڪيفيتن سان آهي ۽ ٻڌندڙ توڙي پڙهندڙ جي ذهن جي ڳڙڪين ۾ پير ۾ پير پائي داخل ٿي، انسان جي اندروني سنسڪرتي ڇانئجي ويندي آهي. اهڙي صورت ۾ ٻي ٻوليءَ جي ڪوتا کي پنهنجي ٻوليءَ جي هنج ۾ وهارڻ لاءِ ٻنهي ٻولين جي مزاج ۽ ماحول جي ڄاڻ سان گڏ، انهن مخصوص شعري تجربن جي اونهائين مان گذرڻ شرط آهي.

هڪ ڪوتا، هڪ اهڙو واقعو هوندو آهي، جنهن جهڙو اڳ ۾ ڪڏهن به نه ٿيو هوندو آهي، پر ڪوتا جي واقعي جي ٿيڻ جي عمل مان جنهن کي گذرڻو پوندو آهي، اُهي لفظ آهن — لفظ، جيڪي هڪ نرالي اندروني دٻاءُ ۽ اڇل جي هڪ خاص قوت جو، ۽ ماضيءَ جي نامعلوم واقعن جي اظهار جو، ۽ جملن جي هڪ ترڪيبي روايت جو، ۽ ٻين ڪيترن ئي ڪوڙين-منين ڳالهين جو ذمو کڻندا آهن، تنهنڪري آهي، اُن ٻوليءَ کان سواءِ، جنهن ۾ اُهي ڪوتا جي روپ ۾ سرجيا آهن، ٻي ٻوليءَ ۾ ترجمو ٿيڻ جوڳا نٿا ٿين. رابرٽ فراسٽ (Robert Frost) ڪوتا جي وصف ٻڌائيندي، ترجمي لاءِ صحيح ڳالهه ڪئي آهي ته

"That which gets lost from verse and prose in translation".

جيڪڏهن ڪوتا جو هر لفظ معنيٰ دار ۽ اُن کي سمجهائڻ جي هڪ ڪُليت آهي ته جڏهن مترجم اصل لفظن جو ترجمو ڪري ٿو ته هو انهن لفظن کان ٻاهر نڪري ٿو ۽ ائين ڪرڻ سان هو ڪوتا کان هٽ ڇڏائي ٿو، پوءِ ٻلي هو لفظن ۾ بيان ڪيل خيال کي ٻي ٻوليءَ ۾ ڪيڏي بهتر طريقي سان، جيڪو ممڪن هوندو آهي، چوڻه منتقل ڪندو هجي. انهيءَ صورت ۾ هو پڙهندڙ کي سمجهڻ ۾ مدد نٿو ڪري، جو ڪوتا سمجهڻ هڪ ڳالهه آهي ۽ ڪوتا جي تجريبي مان گذرڻ ٻي ڳالهه آهي، تنهنڪري ائين چئجي ڇا ته ٻوليءَ جو رکوالو

(Preserver) شاعر ۽ غدار (Traitor) مترجم ڪڏهن به هم خيال نه ٿي سگهندا؟ جيڪڏهن ايئن آهي ته ڇا ڪوٽا کي هڪ ٻوليءَ مان ٻي ٻوليءَ ۾ ترجمو ڪرڻ جي خام خياليءَ کي ڇڏي ڏجي ۽ اسين وسيع ترين زندگيءَ جي خوبصورتين ۽ جمالياتي تجربن ۽ اندر ۾ وهندڙ دريا ۽ اُن جي ڇولين جي چوهه جي ڄاڻ کي وڻڻ وساري ڇڏيون؟ نابوڪوف (Nabokov) اڃا تري راءِ ڏيڻ ۾ الجھڻ کان بچڻ لاءِ، ترجمي جي باري ۾ ڪيڏو نه نيڪ چيو آهي:

The clumsiest literal translation is a thousand time more useful than the pretiest paraphrase.

پر انهيءَ ۾ به ڪو شڪ ناهي ته زندهه ڪوٽا جو وڏو حصو رڳو تڏهن زورائتو ۽ ڀرپور پڙاڏو پيدا ڪندو، جڏهن اُن جو اظهار شاعراڻي روح کي زخمي ڪرڻ کان سواءِ ڪيو ويندو.

مون به ’ڪوٽا ڦلواڙيءَ‘ ۾ ترجمو ڪيل ڪوٽائن ۾ انهن جي روح سان هٿ چراند ڪرڻ بدران، انهن جو اصلوڪو آهنگ قائم رکڻ جي ڪوشش ڪئي آهي، پر هڪ برتن مان ٻئي برتن ۾ اوتڻ سان ڪجهه پاڻي برتن ۾ رهجي ويندو ته ڪجهه اُوس هارجي ويندو. باقي رهيل پاڻيءَ ۾ ڪيترو ڪمائتو آهي ۽ ڪيترو بيڪار، اهو فيصلو پڙهندڙن تي آهي. بهرحال منهنجي اها ڪوشش دل جي چٽي جو نتيجو آهي، جنهن ۾ پيار جو پورهيو شامل آهي. پڙهندڙ سڄڻن کي منهنجي هي ڪوشش پسند پئي ته پنهنجو پورهيو سڃايو سمجهندس.

’ڪوٽا ڦلواڙيءَ‘ جي تياريءَ ۾ هٿ وٺڻا ٿيندڙن جا وڙ و سارڻ نه بلڪ ڳاڻڻ جوڳا آهن. سڀ کان اول پائرن جهڙي مربي دوست ۽ ماهوار ڪونج جي ايڊيٽر هري موٽواڻيءَ جو ٿورائتو آهيان، جنهن رهيجا گروپ آف ڪمپنيز جي خوبصورت ڊائريءَ مون ڏانهن موڪلي، مون کي اُن ۾ سموريون ڪوٽائون اُتارڻ جو خيال پيدا ڪيو ۽ ايتريون ساريون ڪوٽائون يڪجا ڪري، ڪتابي صورت ۾ شايع ڪرائڻ لاءِ اُتساهيو.

جيڪڏهن پياري دوست ۽ سنڌي ٻوليءَ جو شاعر جاويد ساغر پنهنجي سطح تي سچيت ڪتاب گهر لاهور جي روح روان ۽ ’پنچمر‘ (پنجابي) جي ايڊيٽر محترم مقصود شاقب سان رابطو ڪري، ’ڪوٽا ڦلواڙي‘ ڇپائڻ لاءِ آماده نه ڪري ها ته شايد ئي اهو مواد ڪتابي صورت ۾ سهيڙي سگهان ها. پر افسوس جو هو انهيءَ کي ڪتابي شڪل ۾ شايع نه ڪري سگهيو. اهو سهرو

وري منهنجي پياري دوست موهن مدهوش جي سر تي آهي. جنهن پنهنجي اداري ڪريٽا پبليڪيشن طرفان هن ڪتاب کي شايع ڪرڻ جو اهم ڪم ڪيو آهي. اهڙي وڙ کان سواءِ ڇا هي ڪتاب منظر عام تي اچي سگهي ها؟

عزيز دوست ۽ اردو زبان جي گهڻ پڙهڻي ۽ گهڻ لکڻي نامياري ليکڪ محترم آصف فرخيءَ جي مثبت موت جو ذڪر ڪرڻ مون لاءِ اعزاز جو سبب آهي، جنهن ’کوٽا ڦلواڙي‘ تي نه رڳو سير حاصل مهاڳ لکيو آهي، پر ان ۾ مترجم جي حيثيت تي علمي ۽ ناقدانه نقطهءَ نگاهه کان بحث ڪيو آهي، جيڪو هن کان اڳ سنڌيءَ ۾ ڪنهن به نه ڪيو آهي.

پياري دوست ۽ جاکوڙي ليکڪ تاج جويي ۽ نوجوان شاعر دوست زبير سومري طرفان ڪتاب جي باري ۾ وقت بوقت ڏنل مفيد مشورن ۽ پروف ڏسڻ ۾ مدد يقيناً ’کوٽا ڦلواڙي‘ کي بهتر بنايو آهي، جنهن لاءِ سندن لک ٿورا.

محترم حسين احمد ميمڻ، ڪمپيوٽر تي جنهن اورچائي سان مواد جي ڪمپوزنگ ڪئي آهي، انهيءَ جي ساڪ خود هيءَ ڪتاب آهي. هن غلطي ۾ پيريل پروفن کي وري وري درست ڪرڻ دوران ڪڏهن منهن نه گھنجايو. اهو وڙ اصل وسارڻ جو ڳو ناهي.

پنهنجي گھڻاڻ ۽ سپاڳي ڏيڻ/نهن انيتا ڪمليشور جي هن ڪتاب جي تياريءَ جي هر مرحلي تي ورتل ڪوششن ۽ ڪيل محنت لاءِ منهنجون پيار پريون آسيسون ۽ دعائون هجن.

پڇاڙيءَ ۾ پنهنجي جيون ساٿيائي هري وليم لاءِ انيڪ شپ ڪامنائون، جنهن پنهنجي زندگيءَ جو هر پل مون کي اڀريو ۽ هن ڪتاب جي تياريءَ دوران منهنجو هر طرح خيال رکيو، جنهن ڪري منهنجو پورهيو ڇڏي ڇڏي جي مرحلن مان گذري ٿاڀ پيو.

ولي راه ولي

14 جون، 2005

B-44، شريف اسڪوائر، حسين آباد،

حيدرآباد- 71000، سنڌ.

فون: 0223-861331

سيل: 0300-302-7331

اي-ميل: valiramvallabh@yahoo.com

واپسيءَ تي ڪوٽائون

(1)

آسمان ۾ ڪوريٽڙن جو انبار آهي
تون چوڻ ٿو ته اهي تارا آهن
روشنيءَ جي چار ۾ لتڪيل

(2)

هوريانه، لڪيل تارن ۽ ڦٽندڙن جي باري ۾ سوچيندو
مان جهاز مان لھان ٿو،
ان جي هيٺان اچڻ سان گڏ ئي اڏامي وڃڻ جو انديشي ۾

(3)

جسم کي سر کان الڳ ڪندي
گلن جا هار ۽ هر شخص سفيد پوشاڪ ۾.
اسان سڀ آهيون ڪنهن جا پوت؟

(4)

تون. تون. تون.
هٿ جو ملائين. ۽ تون

(5)

ٿڌا هٿ، ٿڌا پير، مون سوچيو
ته منهنجي ڳچي ڌوئڻ لاءِ
سج هتي ٿورو هيٺ ٿيندو.

عادل جساوالا (Adil Jassawalla): جنم 1940ع، بمبئي. ڀارتي انگريزي ليکڪ. ٻه شعري مجموعا: 'Missing Person' ۽ 'Lano: End' شايع ٿيل.

(6)

مضبوط تارن تي
اسان گولين جي ٻولي ڳالهايون ٿا
چڌا چرن ٿا، کُلن ٿا ۽
هڪ ٻئي کي کائڻ ٿا

(7)

ڪي شاندار هئا
ڇا هو
أفق وانگر گهرا ۽ بي جان هئا؟

(8)

پاڻيءَ وانگر اونڌو ڪيل
مان پنهنجي پياري وٽ ڏانهن ٿي هٿان تو
جيڪو هاڻي اُتي ناهي
جيتوڻيڪ انهن اُن جون پاڙون ڇڏيون آهن.

(9)

زمين جا سڪل پٿر
روڻ جي ڪوشش ۾
پنهنجا ننڍا چهرا ڦيري ڇڏين ٿا.
اُتي پويان جتي مان پيدا ٿيو هوس
شايد مان اڃا به
پنهنجي پيدائش ڏسي سگهان ٿو.

●●●

گنگا

نوڪرن کان اڳ
پنهنجي ديا تي

اسان کي ناز آهي
ڏوٻڻ
جنهن تي رنڊي هڻڻ جو

شڪ آهي
لودي نٿي وڃي

کيس هميشه
هڪ ڪوپ چانهه ملي ٿي
جا گذريل شام جي بچيل آهي
۽ هڪ ماني

جيڪا پارو ٿي آهي
پر کائڻ جو گهي آهي

نسم ايزيڪيل (Nissim Ezekiel): جنم 1924ع مرمبني. ڀارتيه انگريزي ساهت ۾ هڪ وڏو نالو. انگريزي ساهت ۾ اعليٰ تعليم ورتل ۽ ايم. اين. راء سان گڏ ڪم ڪيل. شاعر سان گڏ نقاد پڻ. سندس 'A Time to Change' ۽ 'The Third', 'The Exact Name', 'The Unfinished' Man' شايع ٿيل. انهن کان سواءِ اٽڪ ناٽڪ لکيل.

سال ۾ هڪ ڀيرو
هڪ پراڻي ساڙهي ۽ بلائوز
جنهن جي عيوض اسان کي آسانيءَ سان
هڪ اڌ چيني يا اسٽيل جو برتن ملي سگهيو ٿي

انهيءَ کان سواءِ هوءَ پان جي لاءِ
يا ٻار جي منائڻ لاءِ

ڪنگڻ به اوڌرتي وٺي ٿي
هوءَ پاڻ سان گڏ

هڪ ٻوٽي اچي ٿي
۽ اُن کي ڇڏي وڃي ٿي

پر اسان انهيءَ جا عادي ٿي چڪا آهيون
اهي ماڻهو ته ڪجهه سکڻ کان رهيا.

...

آئيني جي اڳيان

توڪي جيڪو پيار ڪري اهڙو شخص ملڻ آسان آهي
 بس انهيءَ ڳالهه جي باري ۾ ايماندار رهج
 ته عورت جي طور تي تنهنجون ضرورتون ڪهڙيون آهن
 آئيني جي اڳيان هن سان گڏ ننگي ٿي بيهج
 جيئن هو ڏسي ۽ پڪ ڪري ته هو وڌيڪ سگهارو آهي
 ۽ تون هن کان گهڻو وڌيڪ ڪومل، جوان ۽ خوبصورت ...
 منظور ڪرينس ته تون کيس ساراھين ٿي.
 هن جي جسم جي سڌولتا تي غور ڪر،
 غسلخاني جي ڦوهار جي هيٺان ڳلابي ٿيندڙ هن جون اکيون،
 فرش تي هن جو ڪجهه جهجهڪي هلڻ، توال ڪيرائڻ، ۽
 جهٽڪا ڏيئي پيشاب ڪرڻ.
 کيس سڀ سؤنپي ڇڏ،
 ڏيئي ڇڏ کيس پنهنجو عورتپڻو،
 ڊگهن وارن جو واس،
 ڇاتين جي وچ جي پگهر جي ڪستوري،

ڪملا داس (Kamala Das): جنم 1934ع، انگريزيءَ جي شاعرا. گهر ۾ ئي تعليم حاصل ڪيائين. مشهور ڪوٽا جا مجموعا: 'The Old Play', 'The Decendants', 'Summer in Culcutta', 'House' ۽ سندس آتم ڪٿا 'My story' 14 بين الاقوامي ٻولين ۾ شايع ٿي چڪي آهي. هوءَ مليالمر زبان ۾ به 'ماءُ وڪٽي' نالي سان لکندي آهي. ڪيرل ساهتيه اڪادمي ۽ ايشين پي. اي. اين طرفان ايوارڊن سان نوازييل.

ماهواريءَ جي رت جي ڪوساڻ
۽ تنهنجي ڪڏهن ختم نه ٿيندڙ عورتاڻي پُڪ.
اوه ها!

پيار ڪري اهڙو شخص ملڻ آسان آهي، پر
بعد ۾ هن کان سواءِ رهڻ کي منهن ڏيڻ پئجي سگهي ٿو۔
زندگيءَ کان سواءِ جيئڻ،
جڏهن تون گهمندي آهين،
اجنبين سان ملندي آهين،
انهن اکين سان گڏ
جن پنهنجي ڳولا ڇڏي ڏني آهي،
انهن ڪنن سان، جيڪي رڳو توکي پڪاريندڙ
هن جا آخري سڏ ٻڌن ٿا
۽ تنهنجو جسم جيڪو ڪڏهن هن جي ڇهڻ سان
تپي ڪنجهي وانگر چمڪندو هو،
هاڻي ڦوهر ۽ اجاڙ آهي.

●●●

گوري ديشپاندي

انگريزي (پارت)

ايسارڪا (❀)

مان جنهن جي ڪارڻ اوندھ ۾
نوڪر کان ٿي
۽ قد ۾ سنڀالي وٺان ٿي
اها هيءَ سرد اونداهي رات
هي جهڪندڙ وٺ جون نڪتل پاڙون
هي تارن جو زرد اُجالو
نه آهي
بلڪ ملاقات جي هڪ ساروڻي آهي
جڏهن مُرڪ ۾ ملاوٽ نه هئي
چوري نه هئي
جڏهن گهرايون جلدي يالڪي ڇڄي
نه چاهيون ويون هيون
جڏهن پيار ڪرڻ لاءِ
سڄي دنيا جو وقت هو
۽ دنيا اسان جي طرف هئي
جڏهن تون پريم جي نڙيءَ تي نهن نه ڏين ها
۽ مان پنهنجا ڏند نه پڪوڙيان ها.



گوري ديشپاندي (Gauri Deshpande): جنم 1942ع. انگريزيءَ جي پرمک شاعر. 'Between Births' ۽ 'Lost Love' سندس اهم شعري مجموعا آهن. مراٺيءَ ۾ به لکندي آهي. گڏوگڏ ترجما پڻ ڪندي آهي.

(❀) رات جي اونداهي ۽ ۾ محبوب سان ملڻ لاءِ ويندڙ عورت.

اروند ڪرشن مهروترا

انگريزي (ڀارت)

هڪ پهرئين سوانح نگار جا تبصرا

(1)

ڪجهه اهڙو هو جنهن کي اسان اڳ نه ڄاتو هو
اهڙو جو هن پنهنجي ڪوٽا ۾ نه لکيو هو
اسان جو پهريون ڪم
ته هو انهي پراڻي مرتبان کي
ريجهائي منجهس گهڙي وڃڻ.
ڌوڙ ۾ هوا لتڪيل هئي،
جيڪي ڪتاب هن پورا نه ڪيا هئا
اهي زندهه هئا ۽ ديوارن ۾ انتظار ڪري رهيا هئا.
ڌنڌ اسان کي ڏسي پل هيٺ نواڻي ڇڏي.
سڀ ملائي اسان تي ڏينهن گذاريا
انتظار ڪندي ته
ڪو پڪي، ڪو سوڻ
ٻيو ڪوراز کولي ته سهي.
اسان ڏاکڻ تان لٽاسين اهو ياد ڪندي
ته اتي اسان مٿانئن لنگهي نه نه ويا هئاسين.
جڏهن اسان پوئتي مڙي ڏٺو
ته ڪمري جا تهه ٿي چڪا هئا.

اروند ڪرشن مهروترا (Arvind Krishna Mehrotra): جنم 1947ع، لاهور. تعليم اله آباد ۽ ممبئي.
مروتنائن ڀارتي انگريزي ڪوٽا جو اهم آواز. 'Nine Enclosures' نالي شعري مجموعو ڇپيل.

(2)

وري اونھاري جي ھڪ ڏينھن
جيئن ئي سج پنھنجين سنھڙين نونين تي اُٿيو
مان موٽيس اڪيلو.
منھنجي کيسي جون ليڪون ھاڻي - ڏنڊ جي ڇاقوئن جھڙيون ھيون.
۽ انھن ۾ تازي بارود جي بو ھئي.
ڪناري ۽ شيشي تي
مون روشنيءَ جي پاڇولن جو مطلب کوجي ڪڍيو
۽ اھو رستو ڳولي ورتو
جنھن جو استعمال ھن آڪاس جي
صاف سٿري چيڙي تائين پڄي نڪرڻ ۾ ڪيو ھو.
ندي پوڙھي ٿي چڪي ھئي
اھڙو نانگ بنجي ويئي ھئي
جنھن جا ڦڻ نہ ھجن.
پراڻو بڙ جو وڻ سٽو پيو ھو
ان جو مٿو پاڙن سان ڀريو پيو ھو.
انھيءَ شھر جي عورتن پڇيو:
ھن دريون کوليون آھن يا بند ڪيون آھن؟

(3)

پنھنجي تيز حافظي ۾
ھن پنھنجي ماڻ پنھنجين پريمڪائن وانگر اختيار ڪئي ھئي.
۽ منھنجو ارادو ناھي
تہ سو راخن جي سدولتا ۾ گڙھڙ ڪريان.
جڏھن مان ھن جي نوتبڪ جا ورق ورايان ٿو
تہ ڪجھ ڪردار وکري وڃن ٿا.
مان ھڪ ڀيرو وري
رڪ سان ڀريل انھيءَ اونڌي برتن کي کوٽيان ٿو

۽ پنهنجي راهه ڏيکاريندڙن کي
 سندن سرحدن کي موٽائي ڏيان ٿو:
 ڪوريئي کي پنهنجي چار ۾
 ڪوئي کي الماريءَ ۾
 چچيءَ کي سرن ۾.
 بالڪيڻ ۾ هو لفظن کي بليڊ سان ڪپيندو هو،
 يا انهن کي ٽوپين وانگر اُبتو ڪري پائيندو هو.
 موت جي وقت هن جو وات کليل هو
 هن جو ساڄو هٿ اهڙو گرم هو
 جڻ هن ڪڏهن لکيو ئي نه هجي.

●●●

ٻڙ کي ڪيرائڻ

منهنجي پيءُ ٽڪريءَ تي
اسان جي گهر جي آس پاس جي گهرن ۾
جيڪي مساوي رهندا هئا، انهن کي ڇڏي وڃڻ جو چيو
هڪ ٻئي پويان گهر ڏانا ويا
رڳو اسان جو گهر بچيو
۽ وڻ پوٽر ٿيندا آهن، منهنجي ڏاڏي چوندي هئي
انهن کي ڪيرائڻ پاپ آهي
پر بابي سڀ ڪڍي ڦٽا ڪيا
شوگا، اوڏمبر ۽ نر سڀ ڪيرايا ويا
پر اهو وڏو ٻڙ جو وڻ هڪ مسئلي وانگر بيٺو رهيو
جنهن جو پاڙون اسان سڀنيءَ جي زندگين کان به اونهيون هيون
منهنجي پيءُ انهيءَ کي اتان ڪپائڻ جو حڪم ڏنو.

ٻڙ جو وڻ اسان جي گهر کان ٿيڻو اوچو هو
اُن جي ٿڙ جو گهيرو پنجاهه فوٽ هو
اُن جون سڪل، سخت هوائي پاڙون
تيهه فوٽ يا اُن کان به مٿي

دليپ پرشوتري چتري (Dilip Chitre): جنم 1948ع. مراٺيءَ جو نوجوان تخليقڪار. گذرگڙهه انگريزيءَ جو شاعر پڻ. ساهت جي سڀني صنفن ۾ لکي ٿو. ٻه شاعريءَ جا مجموعا، هڪ ڪهاڻين جو مجموعو ۽ هڪ سفرنامو شايع ٿيل. سندس شاعري انگريزي ۽ ٻين ٻولين ۾ شايع ٿيل. بمبئي جي انڊورنٽزمنٽ ڪمپنيءَ سان وابسته.

ڌرتيءَ تائين جُهڪي آيون هيون
 سو پهرين انهن تاريون ڪپيون
 ڪارائين سان ستن ڏينهن تائين
 جن جو ڏير تمام وڏو ٿي ويو
 جيت ۽ جهر ڪيون وڻ کي ڇڏڻ لڳا
 ۽ پوءِ اهي اُن جي مضبوط ٿڙ تائين پهتا
 پنجاهه ماڻهو ڪهاڙا کڻي ڪپيندا رهيا،
 ڪپيندا رهيا
 وڏي وڻ پنهنجي ٻن سؤ ورهين جا گول چڪرا ڏيکاريا
 اسان اهو سڀ ڪجهه ڊڄندي ڏسندا رهياسين
 جيئن جيئن هڪ اڻ گهڙيل وڻ
 پنهنجي ڄمار پٽري ڪندو ويو

جلدئي اسان بڙوڊا ڇڏي بمبئي روانا ٿياسين
 جتي ڪوبه وڻ ناهي سواءِ انهيءَ جي
 جو اُهو ڪنهن جي سڀنن ۾ وڏي ٿو ۽ ڦهلجي ٿو
 جنهن جون آڪاس - پاڙون اندر گهڙڻ لاءِ زمين کوجين ٿيون.



وڻ جي زندگي وڻ لاءِ

وڻ جي زندگي وڻ لاءِ

وقت گهرجي

رڳو هڪ چاقو ڪپائڻ سان ڪم نٿو هلي

هو اُپريو آهي ڌرتيءَ کي هوريان هوريان کائيندي

انهيءَ مان اُٿيو آهي، انهيءَ جي ڪهڙاڻ کي کائيندي

ورهن تائين اُس، هوا، پاڻي کائيندي

۽ پنهنجي ڪوڏياري کل مان

پنکڙيون ڪڍندي

انهيءَ ڪري هڻ ڪهاڙي ۽ ڪپينس

پر رڳو انهيءَ سان ڪم نه ٿيندو.

ايڏي ساري جاکوڙ مان به ڪجهه نه ٿيندو.

رت ڳاڙيندڙ چوڏا ڀرجي ويندا

۽ ڌرتيءَ جي بلڪل ڀرسان

لهردار ساڻو گوڻچ وري نسرندو

ننڍيون ڏانڊيون

جن کي جيڪڏهن روڪيو نه ويو ته پوءِ

پنهنجي پراڻي شڪل جون ٿي وينديون.

گيو پتيل (Gieve Patil) : جنم 1940ع. انگريزيءَ جو شاعر. ٻه مجموعا - 'How Do', 'Poems'

'You Withstand Body' شايع ٿيل. شاعريءَ کان سواءِ ناٽڪ لکي ٿو ۽ مشهور چترڪار به آهي. پيشو

ڊاڪٽري اٿس.

نه

پاڙ کي پٽڻو پوندو۔

جيڪا لنگر وانگر ڌرتيءَ ۾ ڪُپيل آهي؛

انهيءَ کي رسيءَ سان ٻڌڻو پوندو

۽ چڪڻو پوندو۔ جهٽڪي سان

يا زور لڳائي، سموري جي سموري،

ڌرتيءَ جي غفامان،

۽ وڻ جي طاقت کي ٻڌرو ڪرڻو پوندو،

نهر کي، سفيد ۽ آلي

سڀ کان وڌيڪ تجربيڪار،

ورهين کان ڌرتيءَ کان لڪيل.

انهيءَ کان پوءِ ايندو مامرو

سج ۽ هوا ۾

انهيءَ کي لهساڻڻ ۽ سُڪاڻڻ جو،

سندس ڪارائجڻ، سخت ٿيڻ

سُڪڻ ۽ سڃڻ جو.

تڏهن وڃي ڪٿي ڪم ٿيندو.



آر- پارٿا سارٿي

انگريزي (ڀارت)

ٽپهريءَ جو!

مون ٽپهريءَ جو
پنهنجي ميز تان ڏوڙ ڇڏي
پاڻ کي سنڀالڻ جي هڪ شعوري ڪوشش ۾
سموريون شيون ڦيرائي سان سڃايون

پوءِ مون پنهنجن چاليهن ورهين کي
بيٺر جي هڪ گلاس ۾
بنان ڪنهن جتن جي ڪناري ايندي ڏٺا
پر انهن دوڪن جو

ڪوانٽ ٿي ناهي جيڪي مان پاڻ کي ڏيندو رهيو آهيان؛
مثال طور مان دوستن جي پيسن تي جيئرو رهيو آهيان
اُهي ئي پراڻا ڪوڙ ڳالهائين اٿم

۽ اک به نه ڇنڀي اٿم
مون پنهنجا فائيل انهيءَ ڪري ساڙي ڇڏيا آهن

آر-پارٿا سارٿي (R. Parathasarthy): جنم 1932ع، تعليم ايم- اي، ڊي- لٽ. انگريزيءَ جو مشهور شاعر. ڀارتي توڙي پرڏيهي اخبارن ۾ مشهور، ۽ 'آلڪا ڪوٽا' انعامن سان نوازيل. ممبئي ۾ ڏهن ورهين تائين انگريزي اخبار جو ايڊيٽر ٿي رهيل. 40 ناول، 25 ڪهاڻين جا مجموعا، 15 مضمونن جا مجموعا، 3 سفرناما ۽ هڪ ناولڪ شايع ٿيل. ساهتيه اڪادمي جو ايوارد حاصل ڪيل. آڪسفورڊ يونيورسٽي پريس ۾ ايڊيٽر جي حيثيت سان پهرين مدراس ۾ ۽ هاڻي نيو دهليءَ ۾ آهي.

نه ته اُهي مون کي دٻائي ڇڏين ها

ايتري قدر جو مون ڪيترا ڏينهن خط به نه کوليا آهن.
 مون کي ڪابه شيءِ پوري ناهي ڪرڻي
 هاڻي مان گھڻو ڪري سارو ڏينهن

پنهنجي مٿي مان اڇا وار پٽڻ ۾ گذاريان ٿو
 ڪڏهن ڪڏهن هڪ سگريٽ ڏکائيندو آهيان -
 دونهين جو ايئن پيڇو ڪندو آهيان ڄڻ
 ڪنهن سٺي - گاڏيءَ جي اڪيلي سواري آهيان.

●●●

موت جي پرواري ڪمري ۾

موت جي پرواري ڪمري ۾
اُڃاتل شهر جي هڪ هوٽل ۾
پت تي ڇڄيون
منهنجي جنم-پٽري ٺاهينديون

هوٽل جي هن بي ڍنگي ڪمري ۾
هڪ اڃاتل شهر ۾
مُشت زنيءَ جو شاهد
ڪنهن پنهنجي اُٿيل چار ۾ ڪوريٽو ويٺو هوندو

هتي مان پنهنجو انتظار ڪري رهيو آهيان
هن ڪمري جي ڪونٽي ۾ ٻڌجي -
دروازو پاڻي کلي پوندو
منهنجي بوتن جي ڇيڇاٽن سان

هن سوڙهي ۽ بڪٽي ڪمري ۾
اڃاتل شهر جي هڪ هوٽل ۾
مان پنهنجي ذات جي وحشيءَ کي
ڊائنامائيت سان اڏائڻ وارو آهيان.

ارون ڪولتڪر (Arun Kolatkar): جنم 1932ع، بمبئي. انگريزي ۽ مراٺيءَ جو هڪ جهڙي حيثيت وارو شاعر. پيشو: گرافڪ آرٽسٽ. 'جيڳوري' شاعريءَ جي مجموعي تي 'ڪامن ويلٿ پوئٽري' جو انعام مليل. مراٺي شاعريءَ جو مجموعو 'ارون ڪولتڪر ڪرچيا ڪوتا' 1977ع ۾ ڇپيل.

ڏيئا

ڪٿان ڪجهه سڙڻ جي ٻوڙ پئي آئي
 ۽ مان کيسي مان رومال ڪڍڻ واروئي هوس
 ته منهنجي چيچ هيٺ ڪري پئي
 مون اها پئي هٿ سان ڪڍي ورتي
 ته نڪ تي نڪري آيو رومال سان گڏ
 جيڪو رومال ۾ ويڙهي
 کيسي ۾ وجهي ڇڏيم

ٻوڙ به ڪٿان ڪجهه سڙڻ جي ٻوڙ پئي آئي
 انهيءَ ڪري مون کيسي ۾ ئي نڪ سڻڪيو
 ۽ ڏسڻ واروئي هنس ته
 چيچ ۾ ڪيئن ته نه پئجي ويا آهن
 ته انهيءَ وقت ڏيئا وسامي ويا.

گهوڙو

نالي ۾ بلڪل گهوڙو-
 جنهن جي چمڻ ۽ وڌڻ جي خبر نه ڪائي
 ڪينسر وانگر
 جنهن جو گوشت ۽ رت
 مٽيءَ کان باغي
 جنهن جي نرالي چال جهڙو ڪر وڃ جو چمڪو
 حملو افواهه وانگر تيز رفتار
 جنهن جون تال دار ٽاپون
 سڃاڻيءَ سان وڃندڙ ۽
 مانيءَ وانگر بي ڊيپيون.

پر

پاڻي ٿيل پٿر جي دؤر جون گئل سلطنتون
 (جن جي ڪوپن ۾ لافانيت پني ڪٽ ڪاٽي)
 جن جا جبل لڏي ويا آهن ڪنهن معشيت وانگر
 ڪوٽن سڪن جي دهشتگرديءَ کان۔
 اهي گهوڙي جي تال دار ٽاپن جي وڌندڙ اثر کي
 محسوس ڪن ٿيون
 ۽ پنهنجي روايتي ننڊ مان جاڳي اُٿن ٿيون
 ۽ پنهنجي تخت تاج تان هٽ ڪڍي
 نڪري پڇي وڃن ٿيون
 رڳو گهوڙي جي چال جا وڪريل سڪا
 تاريخ جي شاهراهه تي
 پيل رهجي وڃن ٿا
 بيڪار ۽ بي ضرر
 آتشگير سگريت وانگي

هڪ پوڙهي عورت

هڪ پوڙهي عورت
 تنهنجي ٻانهن جهلي
 گڏ گڏ هلڻ لڳي ٿي
 کيس پنجاهه پيسن جو سڪو گهرجي
 هوءَ چوي ٿي: هوءَ توکي
 گهوڙي جي نعل واري مندر ۾ وٺي هلندي.

تون اهو مندر ڏسي چڪو آهين
 پوءِ به هوءَ منڊڪائيندي هلندي رهي ٿي
 ۽ تنهنجي قميص وڌيڪ مضبوطيءَ سان جهلي ٿي وٺي

هوءَ تنهنجي پٽ نه ڇڏيندي
تو کي ته خبر ئي آهي انهن پوڙهين عورتن جي
اهي سامان وانگر ڇهڻي پونديون آهن

تون مڙي سندس سامهون ٿين ٿو
هڪ اٽلتا سان
تون انهيءَ راند کي هاڻي ختم ڪرڻ چاهين ٿو

جڏهن تون هن جي ڳالهه ٻڌين ٿو
”هنن منحوس ٽڪرين تي ڪا پوڙهي
پيو ڇاڻي ڪري سگهي؟“

تنهنجي نظر سڌي آسمان تي پوي ٿي
بندوق جي گولين جي انهن سوراخن مان
جيڪي هن جي اکين جي هنڌ تي آهن

۽ جيئن جيئن تون کيس ڏسندو وڃين ٿو
سندس اکين جي آس پاس کان شروع ٿيندڙ جھير
سندس ڇمڙيءَ کان ٻاهر ڦهلجڻ لڳن ٿا

۽ ٽڪرين ۾ ڌار پئجي وڃن ٿا
۽ مندرن ۾ چير پئجي وڃن ٿا
۽ آسمان ڪري پوي ٿو

هڪ ٿالھ جي نڪاءِ وانگر
انهيءَ اٿت پوڙهيءَ جي چوڌاري
جيڪا اڪيلي بيٺي آهي

۽ تون

هن جي تريءَ تي پيل

ٿوري ريزگاري وانگر

رهجي وڃين ٿو

واتر سڀلاءِ

هڪ پاڻيءَ جو پاڻيپ

دڪي سان گڏوگڏ ڊوڙي ٿو

گهرجي ڪُنڊ وٽان مڙي وڃي ٿو

پنهنجي رستي تي چرڪي

اوجھو مٿي چڙھڻ لڳي ٿو

پٽ سان جڙي

پيٽو ٿي واپس مڙي ٿو

ڦيرو ڏيئي هڪدم بيھي رھي ٿو

تتل ڳچيءَ وارو پتل جو هڪ ڪوٺو

ڪڏهن اهو ڄاڻڻ کان سواءِ

تہ ڪھڙيءَ طرح

جنڊ جي پڙ جو هڪ ڳنڀير پٿر

پنهنجي رھيل زندگي

هڪ خشڪ نلڪي هيٺان گذارڻ لاءِ

هتي اچي پهتو.

چيٽنيہ

(1)

ٻاهر نڪري اچ

چيٽنيہ هڪ پٿر کي چيو

پٿر جي زبان ۾
 پنهنجي چھري تان اهو ڳاڙهو رنگ اُگھي ڇڏي
 اهو رنگ مون کي توتي ٺھڪندي نٿو پاسي
 منهنجو مطلب آھي
 هن سادي پٿر هجڻ ۾ ڪھڙو هرج آھي
 مان پوءِ به تولاءِ گل آئيندو رھندس
 توکي گونتي جا گل پسند آھن
 آھن نہ؟
 مون کي به پسند آھن!

(2)

انگور جھڙا منا آھن
 ”جيجوريءَ“ جا پٿر
 چيٽنيہ چيو
 هن هڪ پٿر
 پنهنجي وات ۾ وڌو
 ۽ ديوتاڻن کي ٻاهر ٽڪي ڇڏيائين.

(3)

روايتن جي ڌڻ
 هڪ ٽڪريءَ جي لاهيءَ تي چرندي
 نگاهه ڪڍي ڏٺو
 جڏهن چيٽنيہ نمودار ٿيو

ٽڪريون هڪ هنڌ بيٺون رھيون
 جيستائين چيٽنيہ لنگھندو ھيو
 جڏهن هو نگاهن کان اوچھل ٿي ويو
 ڳچيءَ ۾ هڪ وڏو گھنڊ وڳو

۽ روايتن جو ڌڻ
وري چرڻ لڳو.

الماري

تڙڪيل شيشو
پراڻين پيلين اخبارن جي ٽڪرن
۽ اڳڙين سان ڳنڍيل آهي

دروازي جي در جو هر مستطيل
هڪ اسيمبلائي آهي

شيشي جا ڪٽڪي وارا سيت اسڪرائر
ڊگھا دائيدار ٽڪرا
نازڪ تبديل ٿيندڙ شڪليون جهلي بيٺا هئا

خانن تي خانا
الماري پريل آهي
سون جي ديوتائن جي سڌين قطارن سان

تون ڏسي سگهين ٿو سون جي ديوتائن کي
استاڪ ايڪسچينج جي ڪوٽيشنز جي
پڇنڊين کان پريان

اهي توکي ڏسي رهيا آهن
چيريل ادارين ۽
دائمي جوانيءَ جي وعدن پٺيان

تنهنجي ۽ راءِ عامه جي پويان ڏسڻ ۾ اچي ٿو

هڪ سونو هٿ
چرپيءَ کان سيٽيل

دروازي تي - ظاهر آهي!
توقع مطابق نهڪندڙ
هڪ تالو لڳل آهي.

اسٽيشن ماسٽر

تڪيٽ ڪليڪٽر
ايندڙ گاڏيءَ جي اصول ۾ وشواس ڪندو آهي.
جڏهن ڳالهه ٻولھ وقت تي ايندي آهي
هو پنهنجي ڇپ ڪٽندو آهي
۽ دريءَ جي پار توکي سونپي ڇڏيندو آهي
۽ توکي هڪ بهتر
عقل ڏانهن موڪلي ڇڏيندو آهي

هن سرن وارو اسٽيشن ماسٽر
انهيءَ گروه جو آهي
جيڪو هر اهڙي تائيمر ٽيبل کي مدي خارج چئي
رد ڪري ڇڏيندو آهي جو انهيءَ سال شايع ٿيو نه هجي
جڏهن لائين وڃائي ويئي هئي
جيتوڻيڪ انهيءَ پهرئين تائيمر ٽيبل جي مشهوري
ڪجهه اهڙي آزاديءَ سان ڪندو آهي
جو کيس انهيءَ پهرئين جي ستن وچ ۾
پوءِ واري هر تائيمر ٽيبل جي پڙهڻ جي
اجازت ڏيندو آهي.

هو پريشان ٿي لهندڙ سج کي ڏسندو رهندو آهي

ڇڻ سڄ جو لهڻ لڪل ڪرم ڪانڊ جو حصو هجي
 ۽ هون چاهيندو هجي ته آخر ۾ ڪا غلطي هجي
 آخر ۾ هو هڪ نڪاءِ وانگر ها ۽ نه جي وچ ۾ ڪنڌ لوڏيندو آهي
 ۽ چوندو آهي ته هيل تائين ڇپيل سمورا تائيمر ٽيبل
 ڪنهن به ڏنل وقت ۽ ڪنهن به ڏنل لائين تي
 سڀ انهيءَ حد تائين صحيح آهن
 ته اهي سڀ تائيمر ٽيبل ۾ ڏنل آهن
 جيڪو ان وقت ڇپيو هو
 جڏهن لائين وڃائي ويئي هئي

۽ ايترو چئي
 پنهنجن ٻنهي چهرن ۾
 ڳاڙهو پئجي وڃي ٿو.

●●●

ٻيءَ کي هڪ ٽين - ايجر جي پيٽا

توهان کي ڪير ٿو پڇي پاپا
توهان جي پوتر ويچارن، صاف لفظن
۽ اڇن ڏندن کي ڪير ٿو پڇي
توهان جهڙو ڪير ٿو ڪو فرشتو ٿيڻ چاهي
ڪير ٿو چاهي!

توهان ته هڪ ناڪام شخص آهيو پاپا
پنهنجي ترقيءَ لاءِ هٿ پير به هڻي نه سگهيو
بذڪري گهاريو سگهڻ سڀني تي
ڪاش توهان کي ڪي ڏانءُ اڇن ها پاپا
هڪ ئي ڏڪ سان اسي هزار گهڙيون اسمگل ڪريو ها
۽ پوءِ مان فخر سان چوان ها:
'منهنجي پاپا جو ايڪسپورٽ - امپورٽ جو بزنيس آهي،
يونو،'
مون کي توهان تي ڪيڏو فخر ٿئي ها.

پر توهان هر دم
ڪجهه آڏوشي قسم جا
مثالي انسان ٿيڻ ٿا چاهيو

ممٽا ڪاليا (Mamta Kaliya): نئين نسل جي مشهور ڪهاڻيڪار، زال-مڙس ۽ ٻين رشتن تي لکيل
سنڌي ڪهاڻيون ادب ۾ اهم جاءِ والارين ٿيون. ٻه ناول ۽ هڪ ڪهاڻين جو مجموعو شايع ٿيل اٿس. اله آباد ۾
رهي ٿي.

جڏهن ٻيو ڪجهه نٿو سڄهيو
 ته پڳتي شروع ڪري مندر ۾ بيڪار وقت ٿا وڃايو
 فقط ناڪام شخص ٿي
 خدا ۽ خدائيءَ جا ٿيندا آهن پرستار
 توهان مون کي پاڻ جهڙو بنائڻ ٿا چاهيو پاپا
 يا راڻي لڪشمي ٻائي جي پد تي پهچائڻ ٿا چاهيو.

توهان کي پڪ ناهي ته مون کي
 ڪهڙي مهانتا تي پهچائڻ ٿا چاهيو
 مان توهان جي مهانتا کي گڏهه جون ٻه لتون
 ۽ راڻي لڪشمي ٻائي جي مهانتا تي ٽي لتون ٿي هٿان.

اڄ ڪلهه مان گنيپير تاسان سوچيان پئي
 ته توهان کي پنهنجو پيءُ نه سڏيان پاپا
 توهان کي ۽ توهان جي مهانتا کي
 ڇا ٿيو جيڪڏهن مان توهان کي مسٽر ڪپور
 يا اڪائونٽس ڊويزن جو L.D.C سڏڻ شروع ڪريان!
 توهان جي هر ڳالهه منهنجي هر ڳالهه سان ٽڪر ٿي ڪاڻي
 توهان کي شڪ آهي
 ته اڄ ڪلهه منهنجو ڪنهن سان لو آفيئر آهي
 پر توهان پڻ مڃڻ ۾ ڊڄو ٿا
 ڇا ٿيو جيڪڏهن منهنجو پيٽ
 هوريان وڌڻ شروع ٿي ويو آهي
 ۽ مان حمل ڪيرائڻ کان انڪاري آهيان؟
 پر مان خيال ڪنديس پاپا،
 نه ته مون کي سڏ آهي
 توهان هڪدم آتر هٿيا جو سوچيندؤ.



جئڪ لنڊن

انگريزي (آمريڪا)

تمنا

مون کي سچ جي چھري کي ڏسڻ ڏيو
مون کي ڏيکاريو
سچ جو چھرو ڪھڙو ٿو ٿئي!

اي خدا!

ھاڻي،
جڏھن مان ڪم شروع پيو ڪريان
دُعا ٿو گھران ته
اي خدا!
ڪم کان منھن نہ موڙيان
جي رات کان اڳ
موت جي گھڙي اچي پھچي ته
اي خدا، ڪم مون سان گڏ ھجي
۽ مان ڪم ڪندو ھجان.



جئڪ لنڊن (Jack London): آمريڪا جو ھي ۽ ناول نگار ۽ ڪھاڻيڪار 1875ع ۾ ڄائو ھو ۽ 1961ع ۾
خودڪشي ڪري پنھنجي زندگي ۽ جوانت آندائين.

ٽي - ايس - ايليت

انگريزي (آمريڪا)

اڳتي وڌو مسافرو!

مون کي ديوتائن جي باري ۾ گهڻي ڪا خبر ناهي،
پر مان سمجھان ٿو ته دريا
هڪ طاقتور مٽيهاڻو ديوتا آهي، تڏم مزاج ۽ ڪاوڙ پيريل
پنهنجن موسمن ۽ پنهنجي غيظ و غضب جو مالڪ، تباهه ڪندڙ
هو انهن شين جي يادگيري ڏياريندو رهندو آهي،
جن کي انسان وسارڻ چاهيندو آهي
هو منتظر آهي ۽ ڏسندو آهي ۽ منتظر آهي
دريا اسان جي اندر ۾ آهي - سمنڊ اسان کي گهيري رکيو آهي
انت ڪٿي آهي - بي آواز جيخن جو
پڻ - ڇڻ ۾ خاموشيءَ سان ڪو ماڻهو ڇڏي ڳلن جو
جيڪي ماڻهه ۾ پنهنجون پنڪڙيون ڪيرائين ٿا
جهاز جي ٽنهنڙي پيڙ تي ٽڪرن جو انت ڪٿي آهي؟

انت ڪٿي به ناهي - رڳو اضافو آهي
وڌيڪ ڏينهن ۽ ڪلاڪن جو گيهلجندڙ تسلسل
اسان پيٽا جي ڪنن کي ڳولي ڪڍيو

ٿامس اسٽيرنس ايليت (Thams Stairance Eliot: 1888-1965): شاعر، نقاد، شعري،
ڊرامانگار، ايڊيٽر ۽ پبلشنگ ايگزيڪيوٽو. هُو واپاري ڪٽنب سان لاڳاپيل هئڻ جي باوجود، هارورڊ
يونيورسٽيءَ مان پهرين ڊگري حاصل ڪيائين. سندس اسلوب جديد هئڻ سبب، سندس شروعاتي شاعر 1915ع
تائين ڪٿي به ڇپي نه سگهي. سندس نظم (The Wasteland (1922 تي کيس گهڻي شهرت حاصل ٿي.
پبلشنگ جي ادبي سان لاڳاپيل رهيو ۽ ڪيترن ئي نون ۽ جديد شاعرن جي همت افزائي ڪندو رهيو. هو جديد
شاعر طور دنيا جي ادبي لاڙن تي حاوي رهيو.

(سوال اهو ناهي ته اها پيڙا غلط فهميءَ جو نتيجو هئي يا غلط شين جي خواهش جو - يا غلط شين جي خوف جو) اهي ڪن مستقل آهن، جهڙي طرح وقت مستقل آهي اسان اها ڳالهه پنهنجي پيڙا جي پيٽ ۾ پين جي پيڙا ۾ بهتر طور سمجهي سگهون ٿا چو ته اسان جو پنهنجو ماضي ڪرم جي ڌارائن ۾ لڪيل آهي پر پين جي پيڙا هڪ غير مشروط تجربو آهي جيڪو ڪڏهن پراڻو نٿو ٿئي ماڻهو بدلجي ويندا آهن، مرڪن به ٿا، پر پيڙا موجود رهي ٿي لاشن ۽ ڪڪ پڻ ڪي به پنهنجين لهرن ۾ وهائيندي دريا وانگر وقت جيڪو تباھ ڪن آهي، قائم به رکي ٿو

مان اڪثر سوچيندو آهيان: ڇا ڪرشن جو اهوئي مطلب هو ته مستقبل هڪ مدمر گيت آهي ۽ انهن جي واسطي جيڪي اڃا پڇتاءَ لاءِ پيدا نه ٿيا آهن پڇتاءَ جو ڳاڙهو گل جيڪو هڪ اهڙي ڪتاب جي پيلن ورقن ۾ رکيل آهي جيڪو ڪڏهن کوليو نه ويو آهي اڳتي وڌو مسافرو ماضيءَ کان پڇي توهان مختلف قسمن جي زندگين يا ڪنهن قسم جي مستقبل ڏانهن وڌيا نه آهيو

اڳتي وڌو اوهين جيڪي سمجهو ٿا ته سفر ۾ آهيو اوهين اُهي ناهيو، جن بندرگاهه کي پوئتي هڻندي ڏٺو هجي يا جيڪي ٻئي سامونڊي ڪناري تي لهندا انهيءَ ڪن، ٻنهي ڪنارن جي وچ ۾ وقت بيٺل آهي مستقبل ۽ ماضيءَ تي هڪ جيترو ڌيان ڏيو هي ڪن ڪرم يا نه ڪرم جو ناهي - سمجهو

ته موت جي وقت انسان جو دماغ وجود جي جنهن نقطي تي
 به مرکوز هجي (۽ موت جو وقت هر گهڙي آهي)
 اهو رڳو هڪ ڪرم آهي
 جيڪو ٻين جي زندگين ۾ بار آور ٿيندو
 ڪرم جي ڦل جو خيال نه ڪريو، اڳتي وڌو
 اوسافرو ۽ ملاحو!
 توهين، جيڪي گهاٽ تي لهندؤ ۽
 توهان، جن جا جسم سمنڊ جا فيصلا سهندا
 يا جيڪي ڪجهه به توهان سان وهندو اها توهان جي منزل آهي،
 ڪرشن، ارحن کي جنگ جي ميدان ۾ چيو
 موڪلائي ناهي بلڪ اڳتي وڌو
 مسافرو!



جي - ايم - مهڪري

انگريزي (پاڪستاني)

سنڌ جي کنڊرن مان

سنڌ جي کنڊرن مان
هتي، هتي، سموري ڌرتيءَ تي
موهن جي ڌڙي، رني ڪوٽ،
آمري، ٺٽي، امرڪوٽ، پنيپور، سکر، بکر مان
هڪ منو آواز ٿو ٻڌجي،
هميشه چنڊ جي چانڊوڪين ۾
هڪ منو آواز ٿو ٻڌجي،
روپيءَ ريتيءَ جي ڪومل ماڻ ۾
تڏي هير جي سدا لڳندڙ نرم چهاڙ ۾
اهو منو آواز ٿو اُڀري،
پري کان چانديءَ جي
گھنڊڻيءَ جي هڪ ڊگهي ڇمڪي وانگيان!

اهو منو آواز اُڀري ٿو
اهو هڪ منو آواز آهي

جي - ايم - مهڪري (G.M. Mehkri): 19 جنوري 1908ع تي بئنگلور ۾ جنم. بئنگلور، پوني، ممبئي ۽ ڪراچيءَ ۾ تعليم حاصل ڪيل. ممبئي يونيورسٽيءَ مان سوشيالاجيءَ جي موضوع تي بي. ايڇ. ڊي ڪيائين. سنڌ سرڪار جي محنت کاتي سان وابسته رهيو. سنڌ يونيورسٽيءَ ۾ شيخ اياز جي وائيس چانسلريءَ جي ايامڪاريءَ ۾ وزنگ پروفيسر ٿي رهيو. ڪراچيءَ جي روزنامہ ڊان ۽ ٻين اخبارن ۾ ڪالم لکيائين. سنڌ ۽ سنڌي ڪلچر جو عاشق هو. سندس ڪالمن جا ٻه مجموعا 'Sorrrows of Sindh' ۽ 'مهڪريءَ جا مضمون' محمد ابراهيم جويي ايڊٽ ڪري شايع ڪيا. هو 15 آگسٽ 1995 تي ڪراچيءَ ۾ وفات ڪري ويو.

ڪا رڙ نه آهي
 ڪا آه نه آهي
 ڪا دانهن نه آهي
 ڪو اوسارو ڪونهي
 ڪا ڪڻڪ نه آهي
 پر هڪ منو آواز
 آس جو ڪو سُر ٻاٽ
 خوشيءَ جو ڪو وِڄن
 پيار جي ڪا مِني
 ويساهه پريو ڪو چهاڙ
 ڪو سُر ٻاٽ:
 مان آهيان
 مان، جيڪا توهان جي ماءُ آهيان
 مان توهان جي سنڌ آهيان
 هتي، هنن ڪنڊرن ۾
 پر مان ڪنڊر ناهيان
 ڪنڊر جيڪي هتي ڦهليل آهن
 ۽ ماضي جي مهانتا جا شاهد آهن.
 پر مان هتي آهيان
 اوهان ۾
 منهنجا پٽڙو ۽ ڏيڻڙو!

منهنجو واس اوهان ۾ آهي
 اوهان سان گڏ
 اوهان جي مون لاءِ پيار سان گڏ
 اوهان جي مون لاءِ ويساهه سان گڏ
 اوهان جي آس مون ۾.
 آس سان گڏ
 ۽ اوهان لاءِ منهنجي سموري آس سان گڏ

منهنجا پٽڙو ۽ ڏيڙو!
 ”مان... سنڌ، ڪيئن ٿي ڪنڊر ٿي سگهان؟“

منهنجا ٻچڙو!
 مان سنڌ آهيان، مان مارئي آهيان
 مان سسئي آهيان ۽ سهڻي به آهيان
 سموري ڌرتيءَ جي گولي تي اوهين
 منهنجو نالو ڪٿو ٿا
 منهنجا ٻچڙو!
 اوهان منهنجا گيت، منهنجو نانءُ
 منهنجي مهما ڳايو ٿا
 اوهان ”جيبل سنڌ“ چئو ٿا
 ڇڻ مون لاءِ رڙو ٿا.
 اوهان جي دلين ۾ مان گيت آهيان
 اوهان جي ڪنن ۾ مان سنگيت آهيان
 پوءِ مان ڪيئن ٿي ڪنڊر ٿي سگهان؟
 مان اوهان ۾ زندهه آهيان
 مان اوهان جي ٻارن جي اکين جي چمڪ آهيان
 مان سندن چپن جي مرڪ آهيان
 سدا ڪو ملتا سان هوريان هوريان وهامندڙ راتين ۾،
 سدا مٺي سُر ٻات ۾ سڏ ڪندڙ آواز:
 جاڳو جاڳو، منهنجا پٽڙو ۽ ڏيڙو!
 هاڻي جاڳو، جاڳو ۽ اُٿو
 اُڀرندڙ سج جي سونهري مهاندا ۾ پسو!
 اُڀرندڙ سج جي سونهري مهاندا ۾ پسو!

فريڊرڪو گارسيا لورڪا

اسپيني (اسپين)

شهر ڏانهن واپسي

رقمن جي هيٺان - لطيف رت جو دريا

هر روز نيويارڪ ۾ ذبح ڪيون وڃن ٿيون
چاليھ لک بدڪون
پنجاھ لک مرون
ٻہ هزار سرٿيون
هڪ مرٿينگ انسان جي خوشيءَ جي خاطر

هي دوزخ ناهي -
هڪ ڳلي آهي
موت ناهي -
رڳو گلن جو کوکو
مان جيئن جو گيت ٻڌان ٿو
ٻارن جي دلين جي تهن ۾.

فريڊرڪو گارسيا لورڪا (Fredrico Garcia Lorka: 1898-1936) اسپين جي هن شاعر ۽ ناٽڪ ڪار پنهنجي شاگرديءَ جي زماني ۾ شاعري، سنگيت ڪمپوزنگ ۽ چترڪاريءَ ۾ پنهنجا فنڪاراڻا جوهر ڏيکارڻ شروع ڪري ڏنا هئا. شروعاتي شاعريءَ جي مجموعن (Libro de Poemas, 1921) ۽ Book of Poems (Songs (Canciones-1924) وسيلي شهرت حاصل ڪرڻ کان پوءِ ڪجهه شاعري (First Gypsy Ballads (Primer Remmancero Gitaho-1928) ۾ پيش ڪيائين. 1929-30 دوران آمريڪا جو سفر ڪيائين ۽ اُتي تعليم حاصل ڪيائين. اُن کان پوءِ سندس ڪيترائي ڪتاب شايع ٿيا. آمريڪا کان موٽڻ کان پوءِ لورڪا هڪ تربيتي ٽيئيٽر قائم ڪيو. 1936 ۾ کيس گرفتار ڪيو ويو ۽ سندس موت پراسرار نموني ٿيو.

.....

۽ مان پاڻ کي جانورن ۽
 انبوهه جي خوراڪ لاءِ پيش ڪريان ٿو
 جن جي دانهن سان سڄي ماڻھو
 گونجي رهي آهي
 جتي 'هٻسن' وهي رهيو آهي
 جنهن جو پيٽ تيل سان ڀريل آهي

الوداع

جيڪڏهن مان مري وڃان
 ورنديو ڪليو ڇڏي ڏجو
 ننڍڙو نينگر سنگترا پيو کائي
 (پنهنجي ورندي مان کيس ڏسي سگهان)
 هاري سنگ پيو لڻي
 پنهنجي ورندي مان سندس آواز ٻڌان

جيڪڏهن مان مري وڃان
 منهنجي ورندي کي ڪليو ڇڏي ڏجو

●●●

قاتلو!

اڄوڪي سيپٽمبر 73 جي تلخ ڏينهن تي
تاريخ جي سڀني مرن گڏجي
اسان جي جهنڊي کي ڪيرائي وڌو آهي
تو ڪيترو روت وهايو آهي
تون جيڪو پنهنجي جاگيرن تي پلجي تلھو ٿيو آھين
تون اهو ڌاڙيل آھين
جنهن جو نڪالو شيطاني جهنم آهي
تون هزارين پيرا خريديو ۽ وڪيو ويو آھين
تو کي نيويارڪ جي بگھڙن انهيءَ ڪم تي لڳايو آهي
توهان اڏيت جون لالچي مشينون
پنهنجي مٿس جي رت ۾ رتھائين ٿيل آھيو
امريڪا جي ٽڪرن ۽ هوا جا عصمت فروش سوداگرو!

پئبلو نرودا (Pablo Naruda): سندس جنم 12 جولاءِ 1904ع تي ٿيو هو. هو هڪ دانشور، مارڪسي قوم پرست ۽ اسپيني زبان (چليءَ جي قومي زبان) جو سڀ کان پهريون انقلابي شاعر هو، جيڪو ڏکڻ آمريڪا ۽ اسپين جي ادبي دنيا تي اڌ صديءَ تائين چاٽيل رهيو. سندس موت هڪ عظيم المناڪ سانحو آهي. مرڻ کان اڳ، پئبلو سامراجين جي ڏاڍ ۽ ظلم جي خلاف نفرت جو اظهار پنهنجي آخري نظم ۾ ڪيو آهي، جيڪو هن پنهنجي موت کان ڪجهه ڏينهن اڳ لکيو هو. 1924ع ۾ سندس چار شعري مجموعا (1) Twenty Poems of Love and One Song of Despair (2) Residence on Earth (3) Canto General (4) Odes Elements سان گڏ سندس سارو ٿين جو ڪتاب 'Memoirs' شايع ٿيل آهن. کيس بين الاقوامي امن انعام، لينن ۽ اسٽالن امن انعام، آڪسفورڊ يونيورسٽي پاران ڊاڪٽر آف لٽريچر جي اعزازي ڊگري ۽ آخر ۾ 1971ع ۾ ادب جي نوبيل انعام سان نوازيو ويو. سندس مٿس پراسرار حالتن ۾ 24 سيپٽمبر 1973ع تي ٿيو.

بي رحم ڪاسائيو!
 بي اصول ظالمن جي ٽولي!
 توهان جي حيات جو مقصد
 اڏيتون ڏيڻ ۽ بڪ مارڻ کان سواءِ
 ٻيو ڪجهه به ناهي.

جل پري

اهي سڀ اندر موجود هئا
 جڏهن هوءَ ڪپڙن کان آجي ٿيل صورت ۾ داخل ٿي
 هو پي رهيا هئا
 انهن مٿس ٽڪڻ شروع ڪيو
 هوءَ دريا مان اجهو هاڻي آئي هي
 سندس سمجھ ۾ ڪجهه نه آيو
 هوءَ اهڙي جل پري هئي
 جيڪا پنهنجو رستو پلجي چڪي هئي
 طعنا سندس چمڪندڙ جسم تان ترڪي رهيا هئا
 سندس سونهري ڇاتيون، فحش جملن سان ترهيون
 هوءَ لڙڪن کان غير واقف هئي
 هوءَ بلڪل رُني ڪانه
 هوءَ ڪپڙن کان ناواقف هئي
 هن کي ڪجهه به پاتل نه هو
 انهن کيس ٻرندڙ سگريٽن ۽ بوتلن سان چٽيو
 ۽ فرش تي تهڪ ڏيندي ليٽريون پائيندا رهيا
 هوءَ بلڪل ڪجهه نه ڪڇي
 جو لفظ هن لاءِ اوڀرا هئا
 سندس اکيون گذري ويل محبت جي رنگ جهڙيون هيون
 ۽ سندس وار زردِي مائل نگار خانو هو

سُرخ روشنيءَ ۾ سندس چَپَ
 بنان آواز جي چُريا ۽ نيٺ
 هوءَ انهيءَ دروازي مان هلي ويئي
 جيڪڏهن هوءَ پاڻ بچائيندي دريا ۾ گهڙي وئي هوندي
 ته هوءَ پاڪ ٿي ويئي هوندي
 هڪ پيروي برسات ۾ ڌوٿل سفيد پيٽر وانگر
 ۽ پويان نهارڻ کان سواءِ - هوءَ هڪ پيروي
 ترندي رهي
 هوءَ پنهنجي وجود جي آخري پساهه تائين ترندي رهي
 هوءَ عدم آباد ۾ گهڙي ويئي.

سمجھائي

تون ڇنڊين
 گل لاله جون قطارون ڪٿي آهن؟
 'ما ورايت' ڳاڙهن گلن جي پنڪڙين ۾
 ڪٿي لڪل آهي؟
 ڪٿي آهي اها برسات
 جا ڪن ڪن ۾ لفظن ۽ پکين کي
 هڪ هڪ ڪري ٻاهر ڪڍندي رهندي آهي؟
 مان ٿو توکي پنهنجي ڪٿا ٻڌايان:
 انهن منهنجي گهر کي 'گلن جو گهر' چيو هو
 ۽ ڀرسان 'جيرانيمس' جا گل ڪٽيا بيٺا هئا
 منهنجو گهر خوشين جي آماجگاهه هو
 جنهن ۾ کلندڙ ٻارڙا ۽ ڍڪندڙ گلر هئا
 مراقشي، فوجي دستا ۽ هواڻي جهاز وٺي
 موت جا سؤاگر آيا
 انهن قاتلن سان گڏ اُتي پادري به هئا

جيڪي ڪين آشيرواد ڏيڻ آيا هئا
۽ رستن تي ٻارڙن جو رت ائين وهڻ لڳو
جيئن هميشه کان وهندو آيو آهي.

امن جي گهر

هاڻي هو مون کي
امن ۽ سڪون جي حوالي ڪري چڪا آهن
۽ منهنجي غير حاضري ڪين محسوس نٿي ٿئي
مان پنهنجيون اکيون بند ڪري ٿوڇڏيان
مون کي فقط پنج شيون گهرجن
پنج چونڊ شيون
پهرين: بي انت ۽ اٽاهه محبت
ٻين: پن چڻ جو منظر
جو مان زرد، پيلن پنن کي وڻن کان جدا ٿيندو
۽ زمين تي ڪرڻ جو منظر
ڏسڻ کان سواءِ رهي نٿو سگهان
ٽين: سياري جي گڏيل رت
جو انهيءَ رت جو وڻندڙ وسڪارو
۽ سخت ٿڌ ۾ ٻاهر جا شعلا ڏاڍا مهربان لڳندا اٿن.
چوٿين: گرميءَ جي موسم
اهڙي ڳوري جهڙي هندائو
۽ پنجين:
تنهنجون... منهنجي پياري مثالبد... ❀
اڪيون آهن
مان تنهنجين اکڙين کان سواءِ جي نٿو سگهان
مان تنهنجو اکڙين جي چانو هيٺ زندهه رهي سگهان ٿو

❀ پنبلو نروڊا جي زال

مان بسنت رت کي پنهنجي لاءِ اهڙي طرح
 موزون بنائيندس
 جواها تنهنجن نيشن جي نهار سان گڏ
 منهنجي پويان ايندي
 اهي آهن اهي شيون - منهنجا دوستو!
 جن جو مان طالب آهيان
 انهن کان اڳتي ڪجهه به ڪينهي
 ۽ اهي
 هر شيءِ جي ويجهو آهن
 هاڻي جيڪڏهن
 اهي وڃڻ چاهين ته وڃي سگهن ٿيون
 مون ايڏي ڊگهي زندگي گهاري ڇڏي آهي
 هاڻي اهي مون کي مشڪل وساري سگهنديون
 ۽ ڏکيو پنهنجي ذهن جي پٽيءَ تان ميساري سگهنديون
 منهنجي دل جي چُرپُر ڪڏهن بند نه ٿي هئي
 ها، جيئن ته مان امن ۽ سکون جو طالب آهيان
 انهيءَ مان ائين نه سمجهو ته مان ڪو مري سگهان ٿو
 سچ انهيءَ جي اُبتڙ آهي
 اصل ۾ مان زندهه رهڻ چاهيان ٿو
 زندهه رهڻ ۽ هميشه زندهه رهڻ لاءِ
 هونئن برابر آهي
 ته مان زندهه رهي نه سگهندس
 جيڪڏهن منهنجي اندر ۾
 محبت ۽ سوچ جا سلا ڦٽڻ بند ٿي وڃن
 پهريائين انهيءَ فصل جي سلن جا ڳوٺج نڪرندا
 پوءِ اهي زمين جو سينو ڦاڙي
 روشنيءَ سان هم ڪنار ٿي ويندا.



دستانا

مان دانھن ڪريان ٿو
مون اڄ تائين ڪنھن شيءِ کي نه آڇهيو
نه ڪنھن ديوار کي
نه هوا کي
نه تنھنجي جسم کي
مان ته اڄ تائين
نھنجن ھٿن تان دستانا به لاهي نه سگھيو آھيان!

پر ميريون آھن تنھنجون اکيون

ڪيڏو نه بااختيار آھين تون!
اٿين چوي ٿو تنھنجو چھرو
تنھنجو ڍنگ
۽ فيصلو تنھنجو

ڪيڏو نه باحشيت آھين تون!
اٿين چوي ٿو تنھنجو بوٽ

سعید الدین (Saeeduddin): جنم 1954ع جنمڙو، راجستان. سنڌ يونيورسٽي ۽ مان ايم. اي اردو ۽ مر ڪيل. ننڍپڻ ۾ ئي پنهنجي ماءُ پيءُ سان گڏ حيدرآباد سنڌ ۾ لڏي آيل. اڄ ڪلهه ڪراچي ۽ جي هڪ ڪاليج ۾ استاد. ”رات“ سندس شاعريءَ جو پهريون مجموعو 1997 ۾ شايع ٿيل. نثري نظم جو ڪامياب شاعر.

تنهنجا ڪپڙا،

تنهنجي فور-ويل

پر ميريون آهن تنهنجون اڪيون

جيڪي گهورين ٿيون

منهنجا اُگهاڙا پير

منهنجا قاتل ڪپڙا

منهنجا اُگهاڙا ڏينهن ۽ مٽي...

مان پنهنجون اڪيون ٽڪائي وينو آهيان

صاف ۽ نيري آڪاس تي

جتي ڏوڙ نٿي پهچي.

گار

سادو ڪاغذ چوي ٿو: مون تي لک

۽ مان انهيءَ تي هڪ ڪڇي گار لکي ٿو ڇڏيان

اها گار ڪنهن ڏانهن منسوب ناهي

پر اها هر ڪنهن ڏانهن منسوب آهي

خاص ڪري اُن ڏانهن

جنهن کي اعتراض آهي ته اها گار ڪيس ڏني وئي آهي

مون تي مقدمو هلي ٿو

هڪڙو فقيه ۽ هڪ وڏو سرڪاري عملدار

ٻئي اها دعويٰ ڪن ٿا ته اها گار ڪين ڏني وئي آهي

فرياديءَ جو وڪيل چوي ٿو

اها گار مون کي ڏني وئي آهي

وڪيل - صفائيءَ چوي ٿو:

عدالت ۾ گار پڙهي ٻڌائي وڃي

عدالت چوي ٿي اها گار مون کي ڏني وئي آهي

جڳ گار پڙهي ٻڌائي ٿو

۽ ڏاکڻ لهي

جوابدار جي ڪٽهڙي ۾ اچي بيهي ٿو.

۽ درياءُ گيت ڳائي رهيو هو!

جڏهن درياءُ مون پهرين پهرين ڏٺو

ته مان ڊڄي ويس

جڏهن ٻيهر ڏٺم

ته منجهس لهي پيس

تيون پيرو درياءُ گيت ڳائي رهيو هو

مان انهيءَ کان پوءِ ڪڏهن درياءُ تي نه ويس

چو ته درياءُ خود مون ۾ پيهي ويو هو.

اندو ۽ دوربيني

جڏهن مون جيل جو نالو ورتو

ته سڀ سھڪڻ لڳا.

جڏهن هن دشمن جي چُرپر ٻڌائي

ته هو ٽٽڪڻ لڳا

هن چيو اونڌا هي

ته سڀئي هڪ ٻئي کي ڳولڻ لڳا

هن چيو درياءُ وسندين ۾ گهڙي آيو آهي

ته سڀ پولار ۾ هٿ پير هڻڻ لڳا

۽ ٻُڌڻ لڳا

تڏهن هو عياريءَ سان مُر ڪيو

۽ کين وارن کان جهلي

پولار ۾ به چار تهيون ڏياريا ٿين
 ۽ تنگي ۽ تي سڪڻ لاءِ وجهي ڇڏيا ٿين
 هاڻي ڏسون ته هو ڪين ڪڏهن ٿولا هي!

هڪ بي رنگ ماڻهو

هڪ اهڙو شخص
 جنهن جي هٿ جي ڪنهن به آڱر ۾
 معتبر منڊي ناهي
 سندس چانهه جو ڪوپ
 انهيءَ ڇڪتاڻ ۾ تڏو ٿي ويو
 ته هو چانهه ۾ ڪنڊ ڪيتري پيئي ٿو
 جنهن کي سڏ ناهي ته
 ڄاتل در جو ڪڙڪو ڪهڙو ٿيندو آهي
 بي شمار رنگن جا تيوب
 هن جي اڳيان پنهنجون ڪپيل زبانون ڏيکاري رهيا آهن
 سندس پويان پٽ تي تنگيل گهڙيال
 سندس ڏيان کان وانجهيل آهي
 هو پنهنجو پاڻ سان ڳالهائي به نه ٿو
 ڪمري ۾ ايندڙ هو لاءِ
 وٽس ڪوبه سوال ناهي
 نه پڪين جي آوازن کي
 ڪاغذ تي چنڀڙائڻ جو امنگ
 نه ڪنهن سانت لاءِ به ٻول
 ۽ نه ئي سامهون رکيل خالي ڪرسيءَ تي
 کيس ڪنهن وجود جي احساس کان اطمينان ملي ٿو
 هڪ اهڙو ماڻهو
 هڪ بي رنگ ماڻهو.

مون کان پوءِ

هي منهنجن بوتن جو جوڙو آهي
 هي منهنجو ڦٽو تو
 هيءُ منهنجي پين ۽ ڪاپي
 تون انهن کي احتياط سان ڇهندين
 ۽ مون کي محسوس ڪرڻ جي ڪوشش ڪندين!

تون منهنجا پير منهنجن بوتن ۾
 منهنجو ڦٽو تو منهنجن وارن ۾
 ۽ منهنجي پين منهنجين آڱرين ۾ ڏسندين
 ۽ پوءِ روئي ڏيندين

تون نفرت ڪندين ۽ پنهنجن هٿن کان
 جيڪي جهلڻ جي تو ڪڏهن مون کي اجازت نه ڏني
 پنهنجن چين کان
 جيڪي منهنجن چين جي تڙپ جو مان رکي نه سگهيا
 ۽ پنهنجيءَ دل کان
 جنهن کي مان ڪڏهن جيتي نه سگهيس

پر مان پنهنجيون اکيون پنهنجي ڦٽو تي
 پنهنجا چپ پنهنجيءَ ڪاپيءَ تي
 پنهنجيون آڱريون پنهنجيءَ پين تي
 ۽ پنهنجي دل پنهنجن بوتن ۾ ڇڏي آيو آهيان
 جيڪي اڄ پڻ تنهنجن قدمن ۾ پيا آهن.

دهشت پسند

دهشت گرديءَ جي الزام ۾
 مون کي جيل موڪليو ويو
 منهنجي ڪوٺڙيءَ جي پوئين ڏيواري جي پويان

نمار اونھو سمنڊ ھو.

پھرين رات ئي مون پنھنجا جوتا
مٿاھينءَ تان روشندان مان ٻاھر ڦٽا ڪيا
ٻئي ڏينھن جيل جا محافظ ڏاڍو گھبرايل ھئا
انھن مان ھڪڙي ٻڌايو:
تنھنجا جوتا صبح جو جيلر جي وھاڻي ھيٺان لڌا ويا.

ٻي رات مون پنھنجو بيلٽ روشن دان جي وسيلي سمنڊ ۾ ڦٽو ڪيو
ٻئي ڏينھن ڊنل محافظن اچي ٻڌايو:
صبح جو تنھنجو بيلٽ عدالت جي دروازي تي لٽڪيل ڏٺو ويو.

ٽين رات مون پنھنجا پير ڪپي ٻاھر اڇلائي ڇڏيا
صبح جو منھنجا محافظ ھيسجي ڪوٺڙيءَ ۾ گھڙيا
انھن ٻڌايو:

صبح جو منھنجا پير ممنوع علائقي ۾ توب جي جاءِ تي ڪٽل ھئا.

ٻئي ڏينھن مون موقعو ٽاڙي پنھنجا ھٿ ڪپي روشن دان کان ٻاھر اڇلائي ڇڏيا
ٻئي صبح جو سپرنٽينڊنٽ پنھنجي ڏھشت جو اعتراف ڪندي ٻڌايو:
صبح جو تنھنجون ٻاھون سرڪاري جلاڌ جي ڳچيءَ ۾ ڪشيل ڏٺيون ويون.

۽ پوءِ مون کي بي ضرر سمجھي آزاد ڪيو ويو
جيل جا پنگي مون کي ٻاھر ڊسٽ بن ۾ رھڻي آيا.

۽ ھاڻي جيڪڏھن کين پتو پئجي ويو
تہ آئون ھڪ پيروري جڙي ويو آھيان
تہ شايد اھي ڏھشت کان مري وڃن.



أهي سرڪس وارا

هڪ پوڙهو هاڻي
رسيءَ تي سائيڪل هلائي ٿو
سرڪس وارا
رسيءَ جي آخري چيڙي تي
باهه لڳائي ٿا ڇڏين
هيٺ چار وڇايل آهي
سرڪس وارا هاڻيءَ جي ڪرڻ سان
چار هٿائي ٿا ڇڏين
هڪ دهل آئين ٿا
هاڻيءَ جو ٻچڙو جنهن تي ويهي
سڀنيءَ کي خوش ڪندو رهندو
پوءِ گھڻا جوڪر
هن کي هڪ پاسي وٺي ويندا
۽ ميدان ۾ هڪ چوڪري داخل ٿيندي
سرڪس وارا پنجاهه ڪرسيون
هڪ ٻئي مٿان رکي
چوڪريءَ کي سڀنيءَ جي مٿان بيهاري ڇڏيندا

ذیشان ساحل (Zeeshan Sahil): جنم حيدرآباد سنڌ ۾. اردو زبان جو شاعر، سندس پهريون شعري مجموعو 'ايرينا' (1985)، ٻيو 'چڙيون ڪا شور' (1989)، ٽيون ڪراچي' (1995)، چوٿون 'اي ميل (2002) ۽ پنجون 'شب نامه' (2002) ڇپيل. اڄ ڪالھ ڪراچي ۾ رهي ٿو ۽ خوب شاعري ڪري ٿو.

هوءُ ڪرندي ڪانه
 اها سڀنيءَ کي سڏ آهي
 سرڪس وارا گھڻن ڏينهن کان شهر ۾ آهن
 سڀنيءَ کي سڏ آهي
 ان کانپوءِ چوڪري
 هڪ اچي گهوڙي تي چڙهي
 دير تائين ڪرتب ڏيکاريندي
 پوءِ سرڪس وارا
 هڪ شينهن کي آڻيندا
 هو پنهنجو وات کوليندو
 چوڪريءَ پنهنجو سر شينهن جي وات ۾ وجهندي
 انهيءَ نماشي ۾
 شينهن پنهنجو وات بند نه ڪندو
 ۽ جيڪڏهن بند ڪندو
 ته سرڪس وارا کيس ڪجهه به نه چوندا
 کين ڏاڍي آساني آهي
 اُهي سرڪس وارا آهن

هڪ بي جان نظم

هيءُ هڪ بي جان نظم آهي
 اوهان کي ڪو نقصان نه رسائيندو
 اوهان جي رستي ۾ به نه ايندو
 ٿي سگهي ٿو
 آئيندي هي اوهان کي نظر ئي نه اچي
 هن کي ته ڪوبه ٿڌو هڻي
 هوا ۾ اڏاري سگهي ٿو
 يا هٿ ۾ کڻي ڇت سان ڦهڪائي سگهي ٿو
 آسمان هيٺ يا پٽ تان

جڏهن هو هيڏانهن هوڏانهن ڀرڪي رهيو هجي
 اوهان مٿس دل کولي ڪلي سگهو ٿا
 ايترو ڪلي سگهو ٿا
 جو اکين ۾ لڙڪ تري اچن
 هڪ بي جان نظر ته روئي به نٿو سگهي
 اوهان ڏاڍا خوش قسمت آهيو
 جان دار آهيو
 ڪجهه به ڪري سگهو ٿا
 هڪ بي جان نظر جي جان به وٺي سگهو ٿا

ڪوئي جي سالگرهه

هيءَ جيڪا پٽ تي گهڙي بند پئي آهي
 ان جو ڪو خاص ڪارڻ آهي
 ها! ڪارڻ چڱو اهم آهي
 اڄ ڪوئي جي سالگرهه آهي
 اوهان ڪلو پيا
 جيڪڏهن ڪوئي کي خبر پئجي وئي
 ته اوهان سندس سالگرهه جي ڏينهن ڪليا هئا
 ته سٺل حالت ۾
 اوهان جي پيرن جون آڱريون ڪٿري ڇڏيندو
 ۽ جيڪڏهن وڌيڪ ڪاوڙ آيس
 ته ٿي سگهي ٿو
 اوهان جي پتلون ۾ ڪئين سوراخ ڪري ڇڏي
 ڪوئو ڪاوڙ جو ڏاڍو تيز ٿيندو آهي
 اوهان سندس موڊ خراب نه ڪريو
 بسڪوئن جي پور
 ۽ ڊبل روٽيءَ جا ٽڪر

صوفي جي پويان اچلي ڇڏيو
 گهڙيءَ کي بند ٿي رهڻ ڏيو
 اڄ جو ڏينهن ڪو ايترو اهم ته ناهي
 اڄ ته هونئن به
 ڪوئي جي سالگره آهي.

سڙيل الماري

ماءُ لارڊ!

ماءُ فٽ!

منهنجي پيڻ

ڪافي دير کان روئي رهي آهي
 ٿورو پنهنجي سائيڪل جي گهٽي ته وڃايو
 هوءَ ماڻ ٿي ويندي

منهنجو ڀاءُ

ڪيترن ڏينهن کان ماڻ آهي

اوهان پنهنجي ٽوپي

سندس مٿي تي رکو

هو ڳالهائڻ لڳندو

منهنجو پيءُ

هڪ وڪ به هلي نٿو سگهي

پنهنجا جوراب کيس ڏيئي ڇڏيو

هو سڀني کان اڳيان نڪري ويندو

۽ منهنجي ماءُ -

کيس ته ڪجهه نظر به نٿو اچي

اوهان کيس عينڪ ٺهرائي ڏيو

هو مون کي ڏسي وٺندي

ماءُ لارڊ!

هي الماري نه گهرجي
 اوهان جي ڏنل عينڪ، توپي ۽ جوراب
 سڀ ان ڀر ته هئا
 منهنجي ماءُ، پيءُ ۽ ڀاءُ
 سڀ ان ڀر ته هئا
 مون پنهنجي پيٽ کي به
 ان ڀر لڪائي رکيو هو
 اها مون کي نٿي ملي
 اها مون کي نٿي ملي
 جڏهن به الماري ڪوليان ٿو
 دونهين کان سواءِ
 لڙڪن کان سواءِ
 ۽ ان سڙيل الماريءَ کان سواءِ
 مون کي ڪجهه به نٿو ملي
 مون کي ڪجهه به نٿو ملي.



منهنجي اُڌار اجائي ناهي

بس اهو ئي ٿيندو نه -
مان پنهنجن ٽڪل کڻين سان
زمين تي اچي ڦهڪو ڪندس
تتل رستي تي اُڀريل وڻن وانگر
بي رنگ ڏينهن
مون کي روڪين ٿا
پر مان وڻ بنجي جي نٿو سگهان
شام جي پهرئين تاري جي اُڀرڻ کان اڳ
انهيءَ وڻ تائين پهچڻو آهي
جيڪو گهاتن جهنگلن ۾ اڪيلو آهي
جنهن جون ٿاريون اڄ به منهنجي انتظار ۾
سرسبز آهن
اڃا شام وستين جي گهرن ۾
باهه دکائيندي ايندي
۽ منهنجي رستي تي اونڌاهيءَ جا پن
وڪيري ڇڏيندي
تڏهن مان رات جي ڇاتيءَ تي
ڳاڙهن گلن وانگر تڙندس

ثروت حسين (Sarwat Hussain): جنم 9 نومبر 1950ع، ملير ڪينٽ، ڪراچي. نئين غزل ۽ نظم جو نمائنده شاعر. شاعريءَ جو پهريون مجموعو ”آڌي سياري پر“ 1987 ۾ شايع ٿيو هو. 9 سيپٽمبر 1996ع تي پنهنجي زندگيءَ جو اٺ آندائين.

تون جيڪڏهن چاهين ته
 پڻ چڻ جي سموري رت
 هتي ئي گهاري سگهين ٿي
 ايندڙ بهار جا ڏينهن
 توکي وستين ڀروئي ويندا.



اڪيون ٻه جاڙيون پيڻرون

جڏهن اسانجن گناهن تي وقت ايندو
ماڻهو مضبوط ٿي ويندا
پوءِ اسان توبه جي ٿاڻڪ سان
خدا جو لباس سبنداسين
تو سمنڊ گروي رکي ڇڏيو
۽ آڪيرن مان چور ايل سون
ٻار جي پهرئين ڏينهن تي مڪيو ويو

تون دک کي چٽيون لڳائج
مون وٽ اوڌر گهڻي آهي ۽ دڪان گهٽ
اڪيون ٻه جاڙيون پيڻرون
هڪ منهنجي گهر پرڻائي وئي ۽ تنهنجي گهر
هٿ ٻه ماتيلا پاڻر
جن باهه ۾ منزل ڪئي آهي.



سارا شگفته (Sara Shagufte): جوان عمريءَ ۾ پنهنجو انت آندائين. پاڪستان ۾ کيس وڏي شاعرا مڃيو ويو، جنهن پاڪستان ۾ عورت جي بد نصيبي جي باري ۾ لڙائيندڙ انداز ۾ لکيو آهي. هڪڙو ئي شعري مجموعو ”آنڪين“ سندس آخري هٿيا کان پوءِ 1985ع ۾ شايع ٿيو. ڇپيو وڃي ٿو ته هن ’ماڻهو‘ جو قرآن جي عنوان سان هڪ ناول لکيو هو، جيڪو گهر ٿي ويو.

صلاح الدين محمود

اردو (پاڪستان)

مان هڪ نابينا

هوا جي اندر
هوا وهي
۽ پاڻيءَ ۾
بس پاڻي
گل ۾ بس
گل جهڙي خوشبوءِ
رات رڳو
اڻڄاڻ

ڏينهن ۾ بس
هاڻي سج نڪري
رات ۾ بس
هاڻي چنڊ
بالڪ، بس هاڻي بالڪ وانگر
بينا هر هڪ ماڻهو

مون پر
وهندي ڏٺو هو

صلاح الدين محمود (Sallahuddin Mahmood)؛ اردو زبان ۾ جديد شاعر جي مڃيل حيثيت. ڏهن سالن لاءِ لاهور مان شايع ٿيندڙ 'سوريا' جو ايڊيٽر ٿي رهيل. سندس تخيل نرالو، طرزِ ادا نادر ۽ لهجو موجوده عهدي ۾ سڀنيءَ کان الڳ. سندس شاعري معنيٰ وانگر ۽ دلگريب. سندس تخليقي ڪاوش ڪتابي شڪل ۾ موجود ناهي. ڪجهه سال ٿيا ته وفات ڪري ويو.

هوا جي اندر پاڻي
چمن ۾ ڳل جي خوشبو هئي
۽ راتين ۾ حيراني
رات ۾ سج جهڙا بن هئا
ڏينهن ۾ تنهنجن تن هئا
هالڪ، چڻ پين تان ڀرڪندڙ
بوندين جي چانڊوڪي هئي

ڪڏهن ڪڏهن
بيٺا لمحن ۾
مان هڪ نابينا هئس

ڪڏهن ڪڏهن
ڏينهن جي جنبش ۾
راتين جي ڏاڪڻ هئي



انهن کي ڇا گهرجي؟

مون فلسطيني پيارن لاءِ اخبار ۾ بيان ڏنو
هنن اهو بيان منهنجي منهن ۾ هنيو
۽ چيائون -

اسان وٽ هاڻي رڳو مورچا بچيا آهن
عرب پيارن جي بيانن سان اسان جا گهر ۽ گدام پرڄي ويا آهن
مون کين چانور ۽ ڪڻڪ موڪلي انهن واپس موٽائي ڇڏي جو
ڪاٺ لاءِ وڻن وقت ناهي

کين رات ڏينهن وڙهڻو پوي ٿو
هونئن به خمار آلوده غذا انهن لاءِ مضر آهي.

مون ڪجهه پيسا کين موڪليا
انهن رد ڪري ڇڏيا ۽ چيائون:

اسان کي سڪن جي نه، گولين جي ضرورت آهي
هڪ ڏسڻي آڱر جي ضرورت آهي

هڪ سرجي ضرورت آهي

هڪ گورڪن جي ضرورت آهي

پر اسان توکي گورڪن جي

طور تي به قبول ٿي لاءِ تيار ناهيون

مان گهر موٽي آيس

اصغر نديم سيد (Asghar Nadeem Syed): پاڪستان جي پنجاب صوبي جو رهاڪو. شاعري، ڪهاڻيون ۽ ٽيليويزن لاءِ ڊراما لکي ٿو، جنهن ڪري گهڻو مقبول ۽ مشهور آهي. لاهور ۾ رهي ٿو.

۽ فلسطيني پائرن لاءِ هڪ نظر لکيم
 اهو سوچي ته گولياڙي ۽ ڀر
 سندن شاعري ڊهجي مري ويئي هوندي
 ۽ کين نظر جي پڪ سان ضرورت هوندي
 انهن منهنجي نظر جو منهن پئي رکيو
 ۽ انهيءَ کي اهو چئي پڇائي ڇڏيائون
 ته اسان کي محفوظ رتبي واري شاعر جي شاعري نه گهرجي
 جيڪو برف باري ۽ گولا باريءَ ۾ فرق نٿو سمجھي
 جنهن جا لفظ نرم وهائي ٿي مٿور کي سمهن ٿا
 مون انهن لاءِ دعا جا هٿ ڪنيا
 انهن افسوس ڪيو:
 ڪاش اهي هٿ سندن دشمن تي ڪڍن ها!
 انهن کي پيو ڇا گهرجي؟
 مان کين پنهنجي پٽ جي ٽينڪ موڪلي سگهان ٿو
 جنهن جي چاهي هن پيچي ڇڏي آهي.
 مان فلسطيني پائرن جي مدد ڪرڻ چاهيان ٿو
 کانئن پڇو انهن کي ڇا گهرجي!

●●●

اي شهر!

اي شهر!

تون پنهنجا گندا پير پساري درياء جي ڪناري ليتيو پيو آهين
 ۽ تنهنجي ڇاتي تي ريتهيون پائيندڙ ڪوليون سج کي گهوري رهيون آهن
 جڏهن اڌ درجن غير ملڪي حڪيمن گڏيل اعلان ڪيو:
 ”بيماري ڳوري آهي، هي ستت ئي مري ويندو“
 ته ڪنهن ماتا ۾ ورتل ٻار وانگر تو کين ڏٺو ۽ ماڻ رهين
 غليظ! بدڪار! بي رحم!

شهر! ماڻهو چون ٿا تون بدڪار آهين

۽ مون پاڻ ڏٺو آهي

شام ٿيندي ئي

تنهنجون رڳيل چهرن واريون عورتون نوجوانن کي ڳڙڪائي وينديون آهن

بي رحم!

جڏهن رات وهامڻ کان پوءِ تنهنجا دانشور

رڪشا ڪري خودڪشي ڪرڻ ويندا آهن

ته تون ماڻ هوندو آهين

عين رشيد (Ain Rasheed): جنم ۽ تعليم ڪلڪتي ۾ ٿيس. نسلي طور تي افغان آهي. پر پشتو وسري وئي اٿس. اڏو ۽ ڀر شاعري ڪري ٿو. سندس شاعريءَ جو لهجو سهيوگي هندستاني اردو شاعريءَ کان مختلف آهي. هندستان ۾ مسلم اقليت تي سندس دستاويزي فلم 'A Seventh Man' بين الاقوامي فلمي ميلن ۾ مقبوليت حاصل ڪئي آهي. هنگالي ليکڪ سنيل گنگو پاڌايار سان گڏ هڪ فيچر فلم جي اسڪرپٽ تي ڪم ڪيو اٿس. هن وقت پوليس کاتي ۾ وڏي عهدي تي آهي.

شهر! مان تنهنجين ديوانو ڪندڙ خواهشن کان بيزار آهيان
 شهر! تون پنهنجا گندا لباس ڪڏهن لاهيندين
 شهر! ماڻهو چون ٿا مرڻ کان پوءِ
 منهنجن هڏن مان بٽڻ ناهيندا!
 شهر! تنهنجين ديوارن تي هي ڪهڙيون تحريرون آهن؟
 شهر! مون مھينن کان اخبار ناهي پڙهي
 شهر! تون چانهه ۾ ڪنڊ وجهڻ پلجي وئين
 ۽ اها تنهنجن لڙڪن جهڙي ٿي لڳي
 شهر! مون کي ننڊ پني اچي، تنگي ڏئي سمهار!

ڪارو خيال

نه منهنجا مٺا!
 فضا خراب آهي ته گاڏي پارڪ ڪري ڇڏ!
 ٻاهر وڃڻ مناسب ناهي
 اداس ٿيڪن ۾ پليل ٻار هاڻي جوان ٿي رهيا آهن
 ۽ هيڊ لائيتس جي روشنيءَ ۾ نت نوان غم ايجاد ڪري رهيا آهن
 اسان انهيءَ مسيحا جي آمد جي آثار جي اوسيٽري ۾ ٿي رهيا سين
 پوءِ سڙڪ تي ڪجهه وڻشائون نظر آيون
 شايد هو اچي ويو آهي!
 ”ها، ها“ وڻشائن لالچ ڀريل آواز ۾ چيو
 ”هلو اسان کي پنهنجين گاڏين ۾ وٺي هلو.“

وڻ ڪارن خيالن ۾ مدغم رهيا
 جڏهن هن ڳچيءَ ۾ لٽڪيل ماڻڪرو فون تي
 ڪيترن ئي ڏينهن تائين رڙيون ڪري چيو ته مان مسيحا آهيان
 ته ڪو آپريٽو سوسائٽيءَ وارن کيس مانيءَ تي سڏايو.

ڪاٿي پي هن تقرير ڪئي
 ايلاز ڪندي چيائين
 مان مسيحا آهيان، مون کي صليب تي چاڙهيو
 ماڻهن واپسيءَ جو پاڙو ڏئي ڪانئس موڪلايو
 ۽ هن سال اسان جي فصلن کي مڪڙ ڪاٿي ويا
 هن سال اسان ندامت جا روزا رکيا
 ۽ ڪاٿون به ته ڇا - ڪجهه هونئي ڪين!
 سڀني پيغمبرن ۽ مسيحن کي جيل مان آزاد ڪيو ويو
 اٺيهه هزار پيغمبر ۽ ٽي سو چاهتر مسيحا
 سڙڪن تي لامارا ڏيندا رهيا ۽ تقريرون ڪندا رهيا

”اي انسان جا اولادو!“
 اسان صدين کان شيشي ٽڪر چونڊيندا رهيا آهيون
 هاڻي انهن شيشي ٽڪرن سان اوهان لاءِ
 هڪ نئين ڪائنات خلقينداسين
 ۽ اوهان جي هٿن مان اجنبِي هٿيار وٺي
 وري توهان کي پٿر ڏئي ڇڏينداسين.“
 ۽ اُهي شيشي ٽڪر چونڊيندا رهيا

اهو ٻار، جيڪو اسان کي صبح جو اخبار ڏئي ويندو هو
 اوچتو غائب ٿي ويو
 اسان جي ڪيرواري به اچڻ بند ڪري ڇڏيو
 اسان سڀ شيشي ٽڪر چونڊيندا رهياسين

پوءِ
 هڪ صبح جو
 اهو چوڪر
 صبح جي تازي اخبار کڻي پڌرو ٿيو

ڪير وارو بالائي ڪٿي دروازي تي بيهي مُرڪي رهيو هو
پوءِ جيل ڀريا ويا!

انهن سرن جو ڇا ٿيندو؟

هر رات، هڪ هجور

پيرن ۾ ٻيڙيون وجهڻ لاءِ تيار
هر رات

ٻيڙيون

پير ڳرڪائي وينديون آهن

رڳو ڪاٻي کي حرڪت جي اجازت آهي

ساڄو ٻيڙين ۾ قابو آهي

ٻيڙين ۾ پير کي ڪيڏو سڪون آهي

جيڪڏهن پير نه ڳرڪائينديون ته

انهن سرن جو ڇا ٿيندو

جيڪي پيرن تي بيٺل آهن؟

هيءَ صدي ڪنجهي رهي آهي...

نه! مان ڪنهن يوناني ڏک ناٿڪ جو مرڪزي ڪردار ناهيان!

نه ئي مان انهيءَ لاءِ جڙيو هوس

- مان ته هڪ خاموش تماشاڻي آهيان

هزارين ورهيه پٿرن ۾ ڦاٿل ڪنهن مرڪزي ڪردار جون اکيون

جڏهن باز کان پٿريون وينديون آهن

۽ جڏهن هو درد کان ڪنجهي چوندو آهي:

”مان سڀني پيار ڪندڙن لاءِ هڪ ڏک ڀريو ڏيک آهيان!“ (1)

يا ورهين جا ورهيه سمنڊن ۾ پٽڪندڙ سياحن کان

(1) ايس ڪلس (2) هومر

خدا جڏهن سندن گهر اچڻ جو ڏينهن ڦري وٺندو آهي (2)
يا جڏهن ڪو ارڏو يوناني مرڪزي ڪردار
پنهنجي اباڻي خدا کي مرڪي چوندو آهي
”تخليق کان پوءِ مون تي تنهنجو ڪو حق ناهي!“ (1)

تڏهن مان پنهنجي پرواري معصوم تماشاڻيءَ کان
ماڃيس گهري پنهنجو سگريٽ ڏکائيندو آهيان:
”خدایا، هي ماڻهو ڪيڏا بيوقوف آهن! (2)

مون کي زندگيءَ جو ڪو تجربو ناهي
شايد پنهنجين غلطين کي کلي وسارڻ جي ڪميءَ کي تجربو چوندا آهن
يا وري شايد انهيءَ اوڻائيءَ جي بيچينيءَ کي ذهن جي فريم ۾ بند رکڻ کي!
شايد، مون کي خبر ناهي

هيءَ صدي ویر جي سور کان ڪنجهي رهي آهي
۽ مان تاريخ جي شاعراڻي اڳڻ ۾ ويهي سوچي رهيو آهيان
”مان نه، هيءَ دنيا ڪمزور ٿي ويئي آهي ۽ جلد ئي مري ويندي!“ (3)

پر... تاريخ نويس منهنجي باري ۾ ڇا لکندا؟

اسان هن شهر ۾!

اسان هن شهر ۾
ڪفن دفن لاءِ اوهان جي آجيان ڪريون ٿا
اسان جي ڪارڪنن جي انتظامي صلاحيت سموري علائقي ۾ مشهور آهي
اسان جي اڳوڻن گراهڪن جي فهرست ڊگهي، غير معمولي ۽ مؤثر آهي
اسان جي مرمين ڪتبن جو جواب ناهي
نوحه خوانن جو انتظام به اسان ئي ڪنداسين.

(1) سارتر (2) شيڪسپيئر (3) ازرا پلوتوڊ

دعاءِ مغفرت جي لاءِ پڻ اوهان کي پريشان ٿيڻ جي ضرورت ناهي!

اسان جا ڪارڪن هروقت موجود آهن
اسان اوهان کي اهو به ٻڌائي ڇڏيون ته
اسان جي قيمت معقول ۽ مناسب آهي
۽

هن موسم ۾
نهایت ئي گھٽ قيمت تي
پير پمارٽ لاءِ
هڪ پرسڪون ڪنڊ جي هيءَ پيشڪش
رڳو
دوستن ۽ نيڪ ماڻهن لاءِ آهي



هڪ پراڻي تصوير

هن ۾ شامل ماڻهن ۾
هڪ پراڻو ساٿي آهي منهنجو
جو مون سان ملي يادن ۾ ويائجي ويندو هو

هڪ چوڪرو آهي جو هوا سان ڳالهين ڪندو هو
هو پيرن سان هلڻ پلجي ويو

هڪ چوڪري آهي جيڪا ڪن پل لاءِ
تڪ ڏيئي زور زور سان ڪلندي هئي
پوءِ سارو وقت رڻندي هئي

هڪ ماءُ آهي بادل جهڙي ماءُ
جيڪا چوواڻي تي ويهي ايندڙ ويندڙ کي
وسريل هڪ ڳالهه ٻڌائيندي رهندي هئي

هڪ بڙ آهي
جيڪو عمر جي اُس ۾ سُڪي ٺوٺ ٿيو

بلراج کومل (Balraj Komal): جنم 25 سيپٽمبر 1928ع، سيالڪوٽ (پاڪستان). اردوءَ جو شاعر،
تخليقڪار ۽ نقاد. ’ميري نظمیں‘، ’رشته دل‘، ’نزد سگ‘، ’پرنديون پرا آسمان‘، ’شهر بر ايڪ تحریر
(شاعري)‘، ’آنکين اوڀر پالڻ‘ (ڪهاڻين جو مجموعو)، ’هريالي ڪا ايڪ ٽڪڙا‘ (هندي ناول). اتر پرديش اردو
اڪادمي، مير اڪادمي، دلي اردو اڪادمي ۽ ساهتيه اڪادمي، ڀارت سرڪار جي ٽيچنگ ڊپارٽمينٽ جا ايوارڊ
مليل.

جڏهن ٻڙ لڳو ته ٻري رک جو ڏير ٿيو

هڪ ننڍڙو پتڪڙو ٻار آهي
جنهن جا سمورا رانديڪا ڀڄي پيا

هڪ مان آهيان جيڪو
سڙڪ جي وڌندڙ پيڙ ۾ پنهنجي گهر جو رستو ڀلجي ويو

پس منظر ۾
هڪ گل آهي، جنهن جو ڪوبه هاڻي نالو ناهي
جنهن جي خوشبوءِ جي ڪابه سڃاڻپ ناهي.

هڪ سڀنيو آهي رنگن ۾ سمهيل
ڪالهه هليو ته سڀنيءَ سان گڏ هليو
هاڻي هڪ اڀاهج وانگر آهي
هاڻي لٺ سهارِي هلي ٿو
رت سان ڀريل راهن تي
تتها، تتها
هروقت پتڪندو رهي ٿو.



دلاسو

اسان جنهن ٻيڙيءَ ۾ ويٺا آهيون
اها هاڻي ڪيڏانهن به نه ويندي

ڪناري تي آباد شهر جون
پل پل دور ٿيندڙ
روشنيون آهن
۽ چؤطرف
پاڻي ئي پاڻي
ٻيڙيءَ جي اندر
ٻيڙيءَ جي ٻاهر

جيترو پاڻي اسان ٻاهر اڇليون ٿا
اُن کان گهڻو
ٻيڙيءَ ۾ ڀرجي اچي ٿو
۽ ٻالڪ پڇي ٿو
ڇا ٻيڙي پٽڻ تي پهچندي؟
اسان بنان سوچڻ جي ورائيون ٿا:

ڪمار پاشي (Kumar Pashi-1935-1992): 'ارڏانگي ڪي نامر'، 'خواب تماشا'، 'ولاس ياترا'،
'انتظار ڪي رات'، 'روپرو' (شاعريءَ جو مجموعو)، 'پهلي آسمان ڪا زوال' (ڪهاڻيءَ جو مجموعو)، 'جملون
ڪي بنياد' ۽ 'انڌيري ڪي قيدي' (ناول) ڇپيل. اترپريديش اردو اڪيڊمي، اتر پريديش تعليم کاتي ۽ اردو
اڪادمي دهليءَ طرفان ايوارڊ مليل.

ها، ها۔ ضرور پهچندي

جيتوڻيڪ سڀنيءَ کي سڏ آهي
اسان جنهن پيڙيءَ ۾ ويٺا آهيون

سچ پچ -

هاڻي اها، ڪنهن پتڻ تي

نه پهچندي!



نلماني ٿوڪان

آسامي (ڀارت)

اوسڪڻا ماڻهو!

اهو جيڪو مان کيس ڏيئي نه سگهيس،
اهو جيڪو مان توکي ڏيڻ وساري ڇڏيم،
۽ اهو جيڪو مون پاڻ کي نه ڏٺو
- انهيءَ سان ڪو فرق پوي ٿو؟

مفاصلو جيڪو توکي مون کان جدا ڪري ٿو،
۽ انهيءَ جي غير موجودگي،
مفاصلو جيڪو مون ۽ منهنجي وچ ۾ آهي،
۽ انهيءَ جي غير موجودگي،
مفاصلو جيڪو سج کي چنڊ کان ڌار ڪري ٿو
۽ انهيءَ فرق جي غير موجودگي
- انهيءَ سان ڪو فرق پوي ٿو؟

اهي جيڪي پهچڻا آهن
پر اڃا پهتا نه آهن،
اهي جيڪي هميشه اچن پيا
۽ کين خبر ناهي ته اهي اچي چڪا آهن
اهي جيڪي اڃا اچڻا آهن
پر سمجهن ٿا ته اچن پيا
- انهيءَ سان ڪو فرق پوي ٿو؟

نلماني ٿوڪان (Nilmani Phookan): آرمي وڊيا پينٽ ڪاليج گوهاتيءَ ۾ تاريخ جو اُستاد. سندس شاعريءَ جي مجموعي ”ڪنٽ ارو گروپ ارو ڪنٽ“ تي پبليڪيشن بورڊ آسام جو ايوارڊ مليل.

مفصلا،

اختلاف،

ڊپ،

ڪاوڙ،

پيار،

ساروڻيون،

ويسر،

ظالم، مظلوم،

شاعري، غير شاعرانه؛

— انهيءَ سان ڪو فرق پوي ٿو؟

هڪ ننڍڙي نينگر ڊوڙندي آئي ۽ چيائين:

تون پويان نه نهارج

نه ته پيتر ٿي پوندين؛

انهيءَ کان ته پاڻيءَ جو ڏهو ٿي پو؛

انهيءَ کان ته مچي ٿي پو.

هليو هل جيڏانهن تون هلندو هجين،

اڳتي وڌ پوءِ پيل اڳيرون نه ٿيندو هجين،

عمل ڪر، پوءِ پيل تون اداڪاري ڪندو هجين،

اداڪاري ڪندورھ پوءِ پيل اداڪاري نه ڪندو هجين.

هاڻي وڌيڪ وقت ناهي:

انهيءَ سان ڪو فرق نٿو پوي

جيڪڏهن تون ويندو هجين يا نه؛

اوهان ٿيئي جيڪي اٺن عنصرن مان جڙيل آهيو،

پاڻ کي جوڙيو،

چوٽه اوهان جي دل ۾ باهه ڀري ٿي،

چوٽه اها اوهان جي هٿن ۾ آهي.

توڙيو
 سوچيو
 جوڙيو
 ڳالهايو
 توڙيو
 عمل ڪريو

اهو جنهن کي اوهان حاصل ڪريو،
 جنهن کي ڳوليو پر انهيءَ مان مطمئن نه آهيو.
 اهو جيڪو طوفاني شعلو آهي -
 اهو ته اوهان جي پويان پراڻگهون پريندو پيو اچي،
 اهو ته توهان کان به اڳيان آهي.

اوسڪڻا ماڻهو!

هوءَ مون کي ننڊ ۾ به ڳولي ٿي

هوءَ مون کان ننڊ ۾ به ڳولي ٿي.
 هوءَ هاڻي ڪٿي ٿي سگهي ٿي؟

سندس چهري تي اڃا اهو اڪوڙيل وڻ آهي؛
 ٻئي ڳاڙهيون نديون
 اڃا سندس ٻنهي چپن کي وهنجارين ٿيون؛

سندس ٻنهي اکين ۾
 اڃا اهي ٻئي گهوڙا آهن؛

اڄ به هر رات
 اهي منهنجي دل کي ڌڙڪائين ٿيون.

●●●

نرمل پرويا بورڊولوئي

آسامي (ڀارت)

موڪلاڻي

مون هن کي ساريال مان
ويندي ڏٺو
جڏهن سج پئي ٻڌو
سندس مٿي تي سج جا سڌا ڪرڻا هئا
ڪلهن تي چيڪاٽ ڪندڙ
په ڪنجهندڙ توکريون

پويان هن جي
پن - چڻ جو موڪلائيندڙ
سونو سج لٿو پئي،
ڪڪائين وسندي،
ٻوڙن وچان لنگهندڙ ڪچو رستو
۽ پڪي لنوي رهيا هئا
هو موڪلائيندو پئي ويو
ڪنهن کي ڪل ته
هو هن زندگيءَ ۾ موٽندو به يا نه!

پرڀات

ڇا صبح،
بندوقن جي نڪائن سان اُڀرندو؟

نرمل پرويا بورڊولوئي (Nirma! Probha Bordoloi): آسامي زبان جو شاعر ۽ نقاد.

نه، بلڪل نه!
 اهو اُڀرندو
 انهيءَ پڪيءَ جي آواز سان
 جيڪو رات جو اونداهيءَ ۾
 پنهنجي چنڊ سان ڪجهه ڪٿي پيو
 هوريان هوريان

رَکَ

تو ٽڙڪاڻ ٻڌو؟
 صندل (88) جي باهه؟
 منهنجي ڇاتيءَ تان ڪپڙو هٽاءِ
 ۽ ڏس:
 رَک جو ڏيڍ.

●●●

(88) صندل: هنديءَ ۾ چنڊن جي وڻ کي چئبو آهي، هندو لاش کي ساڙڻ وقت ان جي ڪاٺيءَ جو استعمال ڪرڻ مذهبي فرض سمجهندا آهن. صندل جي ڪاٺي فقط چڪيا ۾ باري ويندي آهي.

خُرسِٽو بوتيف

بلغاريائي (بلغاريا)

موت جو گيت

جيڪو جنگ جي ميدان ۾ موت ٿو پائي
اهو موت ناهي
جيڪو آزاديءَ جي ويڙهه وڙهي ٿو-
ڌرتي ۽ آڪاس، وٽس حاضري ڏين ٿا
۽ فطرت جهنگلن سان گڏ ڳوڙها ڳاڙي ٿي
۽ وقت جا چارڻ سندس اوسارو ڪن ٿا.

حاجي دمتر^(*) جي موت تي

هو زندهه آهي... هو زندهه آهي...
هوڏانهن، هن ٽڪريءَ تي، رت پُٺل ۽ آخري پساهن ۾
هڪ بهادر، جنهن جو سينو پرڻ
جوان، ڇپ جهڙو اڏول مرد مجاهد
هڪ پاسي بندوق رکيو، هو پيو آهي، هڪ پاسي تلوار پيڇيو...

خُرسِٽو بوتيف: بلغاريا جي ڪالڪان جبلن جي ڪُڪ ۾ ڪالوفر نالي ڳوٺ ۾ 25 ڊسمبر 1848ع ۾ ڄائو هو. هو ساميه وادي نظريئي سان لاڳاپيل هو. پهرئين 'سوويودا' (آزادي) نالي انقلابي اخبار ۾ ڪم ڪيائين. پوءِ 'بلغاريائي جلاوطنن جي دنيا' ۽ 'الارمر ڪلاڪ'، اخبارون جاري ڪرڻ سان گڏ شاعري به شروع ڪيائين. سندس سموري شاعري انقلاب آهي. 2 جون 1876ع تي جنگ جي ميدان جو معائنو ڪندي دشمنن کيس گولي هڻي ماري ڇڏيو.

(*) حاجي دمتر فقط 128 سالين جي مدد سان ترڪيءَ جي حڪومت خلاف بغاوت ڪئي هئي ۽ 28 ورهين جي ڄمار ۾ جولاءِ 1868 ۾ قتل ٿي ويو. خُرسِٽو بوتيف هي نظم سندس موت تي خراج عقيدت طور لکيو هو.

سموري دنيا تي لعنت وجهندڙ سندس چپ ڏڪن ٿا...
 ڌرتيءَ تي لپٽيل ۽ آڪاس ۾ سج،
 لاڀاري جا ڏينهن آهن
 پريان وٺڪار ۾ ڪوڳاڻي پيو
 ۽ سڀ رڪاوٽون ٽوڙي هن جورت وهي پيو...
 لاڀاري جا ڏينهن آهن - اي غلام چوڪريون!
 ڏڪن جا گيت ڳايو! ڏينهن چڙهي رهيو آهي
 غلامن جي ملڪ تي سج سڙي رهيو آهي
 ۽ هڪ سرويچ کي اڃا مرڻو آهي...
 جيڪو ويڙهه ۾ مري ٿو، اهو نٿو مري
 هيءُ سڄي ڌرتي هن لاءِ روئي ٿي
 ۽ هي آسمان به ٿو روئي
 بن، پن ۽ جانور به ٿا روئن
 ۽ چارڻ سندس چاهت جا گيت ٿا ڳائين
 سرڻ سندس منهن تي چانو ڪري ٿي
 ۽ واڳهه سندس ڦٽ چٽي ٿو
 عقاب - پکين جو سرويچ
 منهن سندس مٿان ڦيرا ڏي ٿو - جوڌو جو آهي!
 هر شيءِ ويجهو ويجهو ٿيندي اچي -
 چنڊ چڙهي ٿو ۽ تارن جو آسمان تي آهه راج
 گهاٽا جهنگل جهومن ٿا
 هوا اڪيون مهتي ٿي ۽ جبل 'هائيڊڪ گيت' (88) ٿا ڳائين
 جهنگل جون پريون جهومن ٿيون، ڪيت لهرائين ٿا
 - ۽ هن جا گيت ڳائين ٿا
 ساڻي گاهه تي هوريان تلنديون
 پين جي سهاري ڀرسان ويهن ٿيون.

(88) ان وقت جي گوريلن جو گيت.

ڪا هڪڙي، چھري تي پاڻي ٿي چڙڪائي
 ڪا وري ڦٽن تي مرهم ٿي لڳائي
 ڪا جھڪي چپ ٿي سندس چمي
 هو چير اکين جا ڪٿي تڪي ٿو
 ۽ مرڪي ٿو:

'حسينو! 'ڪاراجا' ڪٿي آهي؟
 ۽ منهنجي يارن جو ٿولو ڪٿي آهي؟
 مون کي ٻڌايو

۽ منهنجي آتما کي منهنجي جسم مان ڪڍي وٺو
 هي جسم هيٺو، هتي ئي، هن پل ختم ٿيڻ ٿو چاهي...'
 اهي اڃا ويجهو اچن ٿيون
 جھومن ٿيون

هٿن ۾ هٿ ڏين ٿيون
 ۽ پوءِ اڳي وانگر جھونگارينديون
 کيس آسمان ڏانهن وٺيو وڃن ٿيون -
 اڏائينديون، ڳائينديون، آسمان ڏانهن وڌنديون...
 باڪ ڦٽي آه ۽ هن ٽڪريءَ تي اهو سروبيچ سمهيو پيو آهي
 سندس رت اڃا پيو ٿي
 واڳھ رت چٽي ٿو
 ۽ سج هڪ دفعو وري ساڳي ريت سڙي رهيو آهي...



ڪاراجا: حاجي ڊمتر جو ساٿي، جيڪو حاجيءَ کان ڪجهه ڏينهن اڳ جنگ ۾ زخمي ٿي ترڪ حڪمران جي
 جيل ۾ مري ويو.

گيو مليو

بلغاريائي (بلغاريا)

سيپٽمبر

(هڪ ڊگهي نظر جو شروعاتي حصو)

راتين جي مثل ڪڪ مان
غلامن جو عمر پراڻو آڪوش ڄاڻو آهي
اها ٽيندڙ نفرت مهان آهي...
ڌنڌ جي اوٽ ۾ -
پريات کان اڳ - اونداهين جي جهنگ مان
۽ سڀني جبلن جي چوٽين تان
ڌرتيءَ جي ويران سوٽ مان، اُڃ کان ڦاٿل زمين مان،
مٽيءَ ۽ گاري جي گهرن مان
ڳوٺن مان ۽ شهرن جي نويڪلن اڱڻن مان
ڪٽن تان ۽ پوين ڪوٺڙين مان،
ڄڻهن مان، ٻنين مان،
اٽي جي چڪيءَ مان، لوهار جي ڌوڻ مان
۽ سڀن ڪنڀرن جي چڪن مان
سڙڪن ۽ ڳلڻن مان لنگهي
پٿرن جي لاهيءَ تان، کڏن ڪوٺن، ڇپن ۽ سرن تان
چوٽين ۽ اوجاين تان... ۽ ڪلهن تان
۽ پاڻ پاڻ ڪندڙ وڻڪار مان

گيو مليو: بلغاريا جي هڪ ننڍي ڳوٺ ۾ 1895ع ۾ جنم ورتو. اُن وقت فاشي پوليس کيس سندس مشهور
نظم 'سيپٽمبر' لکڻ جي ڏوهه ۾ 1925ع ۾ گهڻو ڏيئي صوفيا جي پريسان هڪ ڪاهي ۽ ۾ اُڇلائي ڇڏيو. اها
نظم سندس ئي جاري ڪيل اخبار 'باهه' جي لپيٽ ۾ جنوري 1925ع ۾ شايع ٿي هئي.

۽ جهنگ جي پيلن پن چڻ ۾ چڻيل پنن مان
 پٿرن ۽ پاڻيءَ مان
 جھوپڙن، واڙين، انگوري باغيچن ۽ جوٽيل ٻنڀن مان
 ۽ رڍن جي واڙن، ڪنڊ پاسن ۽ اونداهن ڪوهن مان
 ۽ ڪنڊن ۽ ڪسين تان لنگهندي -
 هي ڦاٿل ڪپڙا پاڻل بکيا ۽ ڪومايل چهرن وارا تيز گرمين ۾ پڪل
 پارِي ۽ لڪ جاسٽايل
 آڪڙيل ۽ وات ڦاٿل مهانڊن وارا
 ۽ جھڪيل پني ۽ سسيل بدن وارا
 ميرن ڪپڙن ۾ هميشه کان اڳهاڙا
 لقون پيرن ۾
 داڳن سان سٿيل چهرا، اڻ پڙهيل، اڻوچھ جهنگلي
 ڪاوڙيل ۽ ٻرندڙ ڪاٺين وانگر...
 هٿن ۾ نه ڪو گلاب...
 چپن تي نه ڪو گيت...
 نه گھڙي، نه گھڙيال
 نه بگل، نه توتاري، نو ڪو سُر سَنگيت...
 لباس تار تار
 چمڪندڙ تلوارن بدران ڏنڊا ۽ لٺيون کنيو -
 هي پورهيت
 لٺيون، ڪهاڙيون، خنجر، ڏانڊاريون
 کُريا کنيو
 ۽ ڪي سورج مُڪي ۽ جا گل کنيو
 جوان پوڙها چنئي ڏسن کان آيا آهن
 چڻ جانورن جا واڙا کلي ويا هجن...
 هي بيشمار - مچريل سان
 سيني ۾ خدا جو سڏ کنيو
 وات ۾ فرياد کنيو
 تنهن آهڻ بند وانگر - اڳتي وڌندا وڃن
 سيلاب وانگر اٿل ۽ اٿموت
 خوفناڪ
 مهان ماڻهو!



نڪولا واپتساروف

بلغاريائي (بلغاريا)

اتهاس جي نالي

اسان گمنام ڪارڪن آهيون، تون اسان جو ذڪر ڪنديين؟
پنهنجي ڪنهن پني ۾ اسان جو نالو لکنديين؟
بصر ۽ ماني سنگهي اسان هيءَ پني کيڙيندا رهياسين
۽ زندگيءَ جي منهن تي ڦٽڪار وجهندا رهياسين.

شڪر ڪر اسان توکي خبرون ڏيندا رهياسين
تو کي جنهن جي اُج هئي، اسان رت پنهنجي سان ريج ڏيندا رهياسين
ايندڙ وقتن جي شاعرن جا قلم ترقيءَ جا گيت لکندا،
پر پيڙا جي هيءَ ڊگهي ڪٿا اڻ لکيل رهجي ويندي
۽ اسان جي هن زندگيءَ جي ڪا معنيٰ ناهي ڇا؟
زهر جو بس هڪ وَڏو آهي — اسان کي ٻيو ڪجهه چوڻو ناهي.

ڪنڊن جي هڪ واڙ هئي، جنهن جا پاڇولا گهٽندا وڌندا رهيا،
۽ اسان جي ماءُ اسان کي چڻي سورن ۾ سڙندي رهي.

ٻن ڇوڙن ۾ اسان مڪين جيئن مٽاسين
مائرن جي سور کي رڳو جهنگلي پن ٿي ٻڌي سگهيا.

نڪولا واپتساروف: هي بلغاريائي شاعر 1909ع ۾ ڄائو هو. ننڍپڻ ۽ جواني بلغاريائي ۽ پهرين مهاڀاري لڙائيءَ ۾ ڏکيا ڏينهن گهاريائين. گورکي سندس پسنديدہ ليکڪ هو ۽ مائاڪوؤسڪي کيس اُتساه ڏنو. 23 جولاءِ 1942ع تي فوجي ٽربيونل ۾ مٿس مقدمو هلائي موت جي سزا ڏني وئي. سندس موت کان پوءِ 1953 ۾ عالمي امن ڪانفرنس ۾ سن سندس لکڻين تي Grand Honorary Prize ڏنو ويو.

جيڪي باقي رهيو، پگهر سان تر هو
 اسان کي ڍڳن جيان جو ٿيو ويو
 وڌن چيو: اهو ئي آهي بامقصد جيون!

پر اسان جو ڏوهه رڳو اهو جو اسان انهيءَ ڏيک تي ٽڪيو...
 انهيءَ ڏک جي، پيڙا جي، قيمت نٿا گهرون
 عيوضي ۾ ڪنهن اجوري، شهرت جي گهرج ناهي
 نه ئي ڪئلينڊر جي تصوير بڻجڻو اٿئون -
 بس، جي اسان کان پوءِ اچن، ڪين ايترو چئجو:
 هڪ زندگي، هڪ ڪلپنا، هڪ مورت گهڙيندا رهياسين
 روشنيءَ لاءِ، اونداهيءَ ۾ وڙهندا رهياسين.



سپاش مڪوپاڌيايه

بنگالي (ڀارت)

گهر ڏانهن

هو سارو ڏينهن ڪيڏندو رهيو

ڪجهه دير کان پوءِ
استريٽ لائيت اچي ويئي
بابو اڃا گهر چونه موٽيو؟

ويڃڻ ويل ته چئي ويو هو:
جلدي ڀڳهار وٺي موٽندس
۽ اڃ شام
ڏٺ لاءِ
ٽول ۽ سوڪڙيون وٺي ايندس

ويڃڻ ويل ائين چئي نڪتو هو
اڃا گهر لائي چونه موٽيو؟

ساس پٽن ۾ ڄمڻ جو آواز
غير رواجي طرح وڏو آواز
ٽهڪندڙ پاڻي

سپاش مڪوپاڌيايه (Subhash Mukhopadhyay): بنگال جي زندهه شاعرن مان هڪ سٺو حساس،
ڪمٽيڊ ۽ اصلوڪو شاعر آهي. کيس نومبر 1984ع ۾ سوويت لينڊ ايوارد ملي چڪو آهي. هي نظم
'اسٽريٽ ويڪلي آف انڊيا' جي ايڊيٽر پرتيش ننديءَ جي انگريزي ترجمي جو ترجمو آهي.

جيئن چانورن ۾ اوتيائين

تہ پير سڙي پيس

چوڪر ڪتاب کنيو

۽ تڏي تي ويهي پڙهڻ لڳو

دريءَ مان ٻاهر نهاريائين:

تاريخ جو ورق

خالي اکين اڳيان کليو رهجي ويس

گهڙيال ڊوڙندو وڃي پيو

نل مان پائي ٽپڪي پيو

مڇن واري ٻلي

پت ٽپي وڃي پئي

ڪتاب جا لفظ

اڳتي چڙ کان انڪاري آهن

هوڏي آهن چوڪر وانگيان

جيڪو پش جي پيار جو ڪاريل آهي

جيڪو نون ڪپڙن جي اوسيڙي ۾ آهي

جيڪي ڏن کان اڳ گنهڻا آهن

بابو اڃا گهر چونه موتي؟

رد پڇاءِ ته ڪڏهوڪو ختم ٿي چڪو

ماڻس وهنجي آئي

۽ ويهي سويتڙ اٿڻ لڳي

سلايون ڪري ٿيون پونس

هر هر هٿن مان

آواز ٿيو:

درچيڪاٽ ڪري ڪليو

ڪير آهي؟

مان آهيان، امان

هو در پيرسان بيهي رهيو

جيڪو گهٽيءَ جي منهن تي آهي

ريڊيو تي خبرون به اچي ويون

بابو اڃا گهر چونه موٽيو؟

هو گهٽيءَ ۾ آيو

ڪيس وڃي ڳولھڻ گهرجي

چوڪ تي ماڻهن جو ميڙ

ڪاري وڻن

زورائتا ۽ تيز ٽڙڪاٽ

ڇڻ بارود هجي

ڪهڙو جشن ٿا ملهائين

هو ڏسڻ لاءِ اڳيان وڌيو

رات جو دير سان

بارود جي ٻوڙ پيريل گهٽين مان

گمنام ڳلين مان گوھيون ڏيندو

موت جي منهن مان ٻڃي

سندس پيءُ موٽي آيو

پر پئٽس نه موٽيو



سنیل گنگوپادیاہ

بنگالي

منهنجو سورگ

نديءَ جي هن ڀر،
جتي بيد جو وڻ جهڪيو بيٺو آهي لهن تي،
اهوئي ته منهنجو سورگ آهي.

وسارڻ جي اوندھ ۾
اهوئي ته آهي هڪڙو تانڊالو...
هڪ اڇو پکي
جيڪو اڏامي وڃي ٿو جادوئي شام جي اوندھ ۾

نديءَ جي هن ڀر
آسمان باري رکيون آهن
تارن جون ڦل چڻيون...
۽ جيڪي گڏ موتي اڇن ٿيون
پڙاڏي جيان،
هن جي ساهن جي آهت،
وڪري وڃي ٿي سڪل پنن ۾!
کوئي کليو
مان چڱيءَ طرح سڃاڻان نٿو هن کي...
کوئي جهڪي ويهي رهيو پاڻيءَ جي بلڪل ڪناري
هڪ سڀني وانگيان!
مان هن ڀر بيٺو آهيان.
پوءِ به

سنیل گنگوپادیاہ (Sunil Gangopadhyay): جنم 7 سيپٽمبر 1934ع، فريڊپور (هائي بنگلاديش).
بنگاليءَ جو شاعر، ڪهاڻيڪار ۽ ناول نگار. هن وقت تائين ڏيڍ سؤ ڪتاب شايع ٿيل. ڪيترائي ادبي انعام مليل
'سني سميه' ناول تي پنڪر چندر انعام مليل. بنگالي 'فتيوار اخبار' ديش جو ايڊيٽر.

تتل پُل جي هُن ڀر
جتي سموري موجودات ئي اُداس آهي،
اهوئي ته منهنجو سورگ آهي.

ٻيو ڪو

جيڪو لکي ٿو، اهو مان ناهيان -
پوءِ مون کي ڇو ڏوه ڏين ٿو؟
ڇا مون ڪڏهن ڌمريل شينهن وانگيان
پنهنجي زنجير توڙي آهي؟

جيڪو لکي ٿو
تنهن جو ننڍپڻ گذريو هوندو ڪنهن ندي ڪناري...
هن سنسار جي پگھل پتين کي ڏٺو هوندو
رت سان رڳيل پاڻيءَ ۾
هن پنهنجو آئينو ڳوليو هوندو
۽ پڇي ڇڏيو هوندو!
مان ته اسڪول ويس، ڪتاب پڙهيم
۽ جڏهن
رستي تي پيل هڪ چھڪ مليو،
ته اهو کڻي مون هوا جي ئي ساري ڪئي!

جيڪو لکي ٿو، اهو مان ناهيان،
لکندڙ مان ناهيان!
اهو ته ڪنهن جبل تي آهي
عورت جي ٻانهن ۾
هن جي شوخ زبان ۽ شرارت
هوا کان به وڌيڪ تيز آهي
هو گھڻ کان شرمائي ڪونه،
هو تباهيءَ لاءِ ڏاڍو اُٿالو
ڪنهن سفارتڪار کان به ڊڄي ڪين

ڇا اهڙو ڪو
چپ چاپ ڪنڌ جهڪائي
ميز تي ويهي سگهي ٿو
مون وانگيان؟

سچو سچ

گھڻا ڏينهن ٿيا --
مان ڀرپور چانڊوڪي ۽ ڀر هليو ٿي ناهيان
يا نديءَ ڪناري
گاهه جو گل پتي
ان جي لهرن تي اچليو ٿي ناهي...
گھڻا ڏينهن ٿيا، گھڻا ڏينهن ٿيا

پوءِ به مون کي سڏ آهي ته
اڃا تائين چانڊوڪي راتين ۾
آڪاس منهنجي اوسيٽري ۾ رهي ٿو،
نديءَ جي ڪنارن کي به
اوسيٽرو آهي منهنجي پيرن جي چھاءُ جو،
گاهه ۾ اپريل
هوا ۾ لهرائيندڙ
ننڍڙي گل کي به
منهنجو ٿي اوسيٽرو آهي
ته ڪڏهن ٿو مان کيس پتيان.

مون کي سڏ آهي ته
نديءَ جون هي لهرون
ڪڏهن نه ڪڏهن مون کي سڏي وٺنديون
۽ انهيءَ سچي سچ جي سھاري
مان جي وٺان ٿو.



ڀڄائي

سڀ ڪجهه هميشه وانگر آهي
ڪجهه به حيرت جهڙو نٿو ٿئي
رڳو ڪجهه ڏينهن لاءِ
هو پنهنجي ڪرسيءَ تي نٿو ويهي
سندس ڪوٽ ڀت ۾ ڪليءَ تي تنگيو پيو آهي

سندس سرنامي تي موڪليل خط
ڪافي ڏينهن تائين مٽي تنگيا پيا هوندا هئا
ڇڏيل، ويڳاٽا
۽ اُن کان پوءِ غلطيءَ کان پڻ
هائي اچڻ بند ٿي ويا آهن

۽ هائي ڪوئي اڻ ڄاتل شخص
سندس نالي جي پليت لاهي بيٺو.

سُڪانت پٽاچاريه

بنگالي (ڀارت)

هڪ ڪڪڙ جي ڪهاڻي

هڪڙي ڪڪڙ
ٻن ٽن ڪڪڙين سان گڏ
هڪ شاهي محل جي ڪنڊ ۾ رکيل
ڀڳل تٽل صندوقن جي وچ ۾
ڪنهن طرح اُجهو حاصل ڪري ورتو

اُجهو ته کيس ملي ويو
پر کاڌي لاءِ ڪافي نه هو
احتجاج رڃان تنهنڪري
ٻانگون ڏيڻ شروع ڪيائين
پر بي رحم عمارت کي ڪهل نه پيشي

پوءِ هن ڪن ڪچري جا دٻا ڳولڻ شروع ڪيا
اُتان کيس پٽ ۽ ماني کاڌي لاءِ ملڻ لڳا
پوءِ هڪڙي ڏينهن ڪجهه ٻيا ڪڪڙ
۽ ميرن ڦاٿل ڪپڙن ۾ به ٿي ماڻهو اچي نڪتا
تنهنڪري ڪمزور ڪڪڙ وري بک مرڻ لڳو

ماني - ماني - رڳو هڪ ننڍو ماني ٽڪر!

سُڪانت پٽاچاريه (Sukant Bhattacharya): جنم 1926ع، ڪلڪتو. 'پوروپاس'، 'منڪڙا' ۽ 'ڇاڙپتر' خاص شعري مجموعا. 21 ورهين جي ڄمار ۾ 1947ع ۾ اوجھو موت.

مجبور ٿي ماني ڪاڻ
هن محل اندر گهڙڻ جي ڪوشش ڪئي
پر هر پيري کيس بي رحميءَ سان ڀڄائي ڪڍيائون
جيتامڙي ڪڪڙ پنهنجو ڳاڻ اڄو ڪيو
۽ محل ۾ پيل اناج جي گدام جو سوچيائين!

پوءِ هڪڙي ڏينهن سڄ پيچ
هو محل ۾ گهڙي ويو
۽ قيمتي ريشمي ڪپڙي سان ڍڪجي
ستو ڊائنگنگ ٽيبل تي آيو
کاڌو کائڻ نه
پر ٻين جو کاڌو بنجي

لوڪناٿ پٽاچاريه

بنگالي (ڀارت)

ڪوٽا پوءِ پيلي اچي!

آڪاس اُٿي ٿي آهي
ها نارنگي سج اُٿي ٿي آهي
پر زندگيءَ ۾ نه ڪوٽا آهي، نڪي وري من ۾ آهي
رڳو سڪڻ شاعرن جي سختي ڏهڪائي ٿي.
وڏن ڪنن وارن گڏهن جا ميڙ
هوا ۾ هيڏانهن هوڏانهن پيا هلن
فريسي، بيهودا ۽ بڪبڪيا گڏهه۔
سندن ڪڏڻن نر عضون کي وڏين ڪئنجن سان ڪپي ڇڏيو!
بي حرڪت رات بهتر آهي
ايتري قدر جو اُداس خاموش پريات به.
او خدا! اسان کي ماڻ عطا ڪر،
انهن شاعرن کي
هڪالي ڪڍ ۽
بيڊن اسڪوائر ۾ لڳل لائوڊ اسپيڪر بند ڪراءِ!
او خدا! اسان ۾ پنهنجن ڀائرن کي پيار ڪرڻ جو جذبو عطا ڪر،
اسانجن ڀائرن ۾ اسان کي پيار ڪرڻ جو جذبو پيدا ڪر،
ذهن جي ناسن کي پوترتا سنگهڻ جي سگهه ڏي۔
ڪوٽا اُن کان پوءِ پيلي اچي.



لوڪناٿ پٽاچاريه (Lokenath Bhattacharya): نيشنل بڪ ٽرسٽ، نيو دهلي ۽ بر ڊپٽي ڊائريڪٽر آهي.

رابندرناٿ ٽئگور

بنگالي (ڀارت)

پهرئين ڏينهن جو سج

پهرئين ڏينهن جي سج
هستيءَ جي نئين پرڪاش کان پڇيو:
تون ڪير آهين؟
ڪو جواب نه آيو

سالرڪان پوءِ ڪئين سال لنگهي ويا
ڏينهن جي آخري سج
اولاهين سمنڊ ڪناري تي
سائنٽ شام جي وقت پڇيو:
تون ڪير آهين؟
تڏهن به ڪيس ڪو جواب نه مليو.



رابندرناٿ ٽئگور (Rabindranath Tagore): 7 جنوري 1861ع تي ڪلڪتي ۾ جنم ورتو. هُو بنگالي زبان جو ليکڪ، شاعر، ڪهاڻيڪار، ناول نگار، سنگيت ڪار ۽ ٻين ڪيترن شعبن ۾ هڪ ترينڊ سٽر جي حيثيت سان مڃيو وڃي ٿو. کيس 1913ع ۾ سنڌس ڪوٽلن جي مجموعي ”گيتا انجلي“ تي نوبيل انعام مليو ۽ سموري هندستان ۾ ته چا پر ٻين الاقوامي شهرت مليس. سندس ديهانت 7 آگسٽ 1941ع تي ٿيو.

موت کان رڳو ٻارنهن ڏينهن اڳ، جڏهن ٽئگور بستري تي نه ويهي ٿي سگهيو ۽ نه ئي قلم جهلي لکي ٿي سگهيو، تڏهن هُن مٿئين رڱ ويد جي شلوڪ تي حيرت کاڌي هئي ته سرشتيءَ جي اها رچنا ڪڏهن ۽ ڪيئن وجود ۾ آئي، جڏهن ته نڪي ڪنهن جو وجود هو. نڪي ابتدائي عدم وجود جو به ڪو وجود هو. هن سوچيو: ”هِن اها سرشتي جوڙي آهي يا نه، هُو جيڪو اوجي آسمان ۾ هن سرشتيءَ جي نگهباني ڪري ٿو، هو اڪيلو ئي ڄاڻي يا شايد کيس سڏي ناهي.“

ٿيرو ميُو-ميٿا

ٿامل (ڀارت)

اُداسين جا گل

اُهي پنهنجون ڪوتائون
تڏهن ئي رجين
جڏهن تهوار اچن
۽ اسان پنهنجون ڪوتائون رجيون
تہ تهوار اچيو وڃن

پهريون پيار

خط مُڪر
تہ هتان هتان رلندو گهمندو
بي سونهون، بي معرفت -
نيٺ اچي واپس مليو
انهيءَ نڀاڳي سرنامي ۾ ئي
ڪا غلطي هئي

اُداسيءَ جا گيت

اوهان اجهو هاڻي
اُداسيءَ جا گيت ٻڌا
جيڪي ويٽنام ويولينٽ (wave length) تان
نشر ڪيا ويا
جيستائين اهي ساڳيا ڏک پريا گيت

ٿيرو-ميُو-ميٿا (Thiru Mu-Metha): چار شعري مجموعا ۽ هڪ ڪهاڻين جو مجموعو ڇپيل.
پريريڊنسي ڪاليج ۾ ٿامل، شمبي جو اُستاد.

ٻيءَ ويولينٽ تان نشر ڪريون

تيسٽائين

سڀني ٻڌندڙن کي

خدا حافظ!

هوا جي زبان ڄاڻون ٿا

ڪنهن ويدن ڪئي آهي

هن عجيب شيءِ سان؟

هر پاسي

سندس چڙيل ۽ پٽيل وارن سان

اهو ڇا ٿي ٿو سگهي....

چو-

اهو ڇا ٿي سگهي ٿو

جو هو اوساري رهيو آهي؟

جيڪڏهن اسان

هوا جي زبان ڄاڻون ها

ته جيڪر اسان پڇي سگهون...

او آڱريون!

جيسٽائين اڪيون رڌل آهن

تمڪندڙ تارن سان ڪيڏڻ ۾

او.... آڱريون!

دريءَ جي سيخن ۾ تيسٽائين

آرام سان ته وهو.



وڪرمادتين

تامل (ڀارت)

مان ڇا تو ڪري سگهان!

دوست!

هتي ڪير آهي

جنهن مون کي ڏکيو ناهي؟

اهي ٻار ڪٿي آهن

جن سڻن تي پٿر وسائي

راند نه ڪئي؟

اهي ماڻهو ڪٿي آهن

جن ٻالڪڻ جي ڏينهن ۾

پوئين جا پر پئي

زندگي ناهي گهاري؟

وڻن تي چڙهي

آڪيرن ۾ پڪين جا آنا ڳولڻ

ڇا راند نه هئي

ٻالڪڻي جي؟

وڪرمادتين (Vikramaditian): تامل جو شاعر. اصل نالو اي- نمبي راجن. اڄ ڪلهه مدراس جي پنڌرهن روزه "اسويني" جي ايڊيٽوريل بورڊ ۾ ڪم ڪري ٿو.

مگر اي دوست!
 مان ڇا ٿو ڪري سگهان
 انهن کي
 جن منهنجن آدرشن جي اُڏامن کي
 ساڙيو آهي؟

زندگيءَ ۾
 دنيا جي حاصلات جي ڪوچ ۾
 ڪير ٿو سمجھي
 دل جي زبان کي؟

اُهي جيڪي
 دوائن لاءِ
 مور مارين
 سي هميشه
 زندگيءَ جي دؤر
 کٽيو وڃن

مگر ڇا ڪجي؟
 رڳو زندگي گهارڻ لاءِ
 ڇا ضمير اسان پنهنجو
 ٻوسائي ڇڏيون

هن ڌرتيءَ تي
 جتي علم ۽ ڏاهپ
 گهاتي ۾ وڪامن
 اسان ڪيئن ٿا
 گهاري سگهون؟

اي دوست!

هن کان پوءِ سڄ ۽ چنڊ ڪٿي آهن
جيڪي منهنجي زندگي ڇمڪائيندا؟

جيڪڏهن منهنجي لاءِ نه،

ته گهٽ ۾ گهٽ انهن لاءِ

جيڪي مون کان پوءِ ايندا

ڪڏهن پوءِ آزاديءَ جو سڄ اُڀرندو؟

...

شان مگا سُبِيه

تامل (ڀارت)

پيت کان پڇ

مٿو ڪنھ

زبان ڇچر ڏندن سان

ڪل

هيٺ جھڪ

هٿ ٻڌ

۽ پير ملائي رک مضبوطي ۽ سان

’اهو سڀ ڇا آهي؟‘

بهتر ٿيندو

تون پيت کان پڇ

اهوئي ٻڌائيندو.

خوش قسمت

ها!

جي ها!

بيشڪ مان خوش قسمت آهيان

پڳوان جي ڪرپا سان

ٻه ٻار آهن منهنجا

شان مگا سُبِيه (Shanmuga Subbiah): ٻه شعري مجموعا ڇپيل اٿس ۽ ڪيرالا يونيورسٽي ۽ جي

آفيس برنوکري ڪري ٿو.

عجيب ڳالهه آهي
 جو ٻئي آهڻ
 پٽ
 ته؟
 مون کي سنڌن جو سور آهي
 زال کي سلھ
 پهريون پٽ
 ويچارو بيمار رهي ٿو
 ننڍو
 اڃا تائين نيڪ آهي
 پر پوءِ جي
 ڪنهن کي سڏ؟
 مان ڪلارڪ آهيان
 ايترو ڪافي آهي
 يا
 اوهان کي وڌيڪ تفصيل
 ڪپڻ؟
 اڃا به!!

محبت جو نظم

ڪاٺ جي صندوق ۾ بند
 شهنشاديءَ جو اڌ جسم ڪارائيءَ سان ڪپيو ويو
 اها زندهه رهي
 هو بينل پيڙيءَ ۾ ڪئين ورهيه ستو رهيو
 جڏهن سندس اک کلي
 ته هن خدا سان جهيڙو ڪيو
 ۽ گلاب جو گل ڇڙي ڇڏيو

۽ غصي جي چادر پائي سمهي پيو
 محبت جي هوا هن جي چادر ۾
 سوراخ ڪري ڇڏيا
 ۽ هو جاڳي پيو
 ايتري قدر جو سندس هڏا
 ٽڙڪاٽ ڪرڻ لڳا
 هو ڪري پيو
 هڪ ارڙي شهزادي جي
 مجبوري سان گڏ
 پنهنجي ڌرتيءَ ۽ پنهنجي شهزاديءَ کي
 ياد ڪندي
 هوا بارش جي بوندن تي
 گيت ڳائي رهي آهي:
 'محبت ڪڏهن نٿي بيهي
 انهيءَ پاڻي وانگر، جيڪو هميشه
 وهندو رهندو آهي
 ۽ ڪڏهن ختم نه ٿيندو آهي!'
 ...

منهنجي زال

هڪ هٿ سان جهلي رکيو اٿائين آسمان کي
 ٻئي هٿ سان ٻچڪاري ٿي ڌرتيءَ کي
 هڪ هٿ سان پکي بڻجي چڱي ٿي لڙڪن جا داڻا
 ٻئي هٿ سان هٿ گهمائي دلا سو ڏي ٿي نڪر پتر کي
 هڪ هٿ سان ٿالهي پرچي ڏي ٿي
 ٻئي هٿ سان ٻارن کي ڪارائي ٿي
 روشني ڀري هڪ هٿ سان اونداهيءَ کان موڪلائي ٿي
 تارن ڀري ٻئي هٿ سان سج جي اڳواڻي ڪي ٿي
 هڪ هٿ سان پاڳ کي گهٽ وڌ ڳالهائي ٿي
 ٻئي هٿ سان مڙڪون وڪيري ٿي
 هتي چؤطرف پنهنجي هٿن جو چڪر بڻائي
 زندگيءَ جي گاڏي چڪيندي
 ڏوٿيندي وڃي رهي آهي وڏي شان سان.



اسماعيل (Esmail): تيليگو جو شاعر. اهر مخزنن ۾ شايع ٿيندو. ڪاڪي ناڙا ڪاليج جو سابق پرنسپال. حال
 رهندڙ ڪاڪي ناڙا.

ڪي - گوداوري سرما

تيليگو (ڀارت)

لفظ

ستو ٿي ڌيان لڳائي
امتحان لاءِ تيار ٿي ويه
ته لفظ بي چيا ٿي انڪار ڪيو ڇڏين
ننڍن ٻارن وانگر
جيڪي اسڪول کان گسائيندا آهن

دري ڀرسان ويه، ٻاهر نهار
بيت لڪ ڇنڊجي ڇانڊاڻ ۾
ته لفظ ڊوڙيو اچن
ننڍن ٻارن وانگر
جيئن اسڪول مان موڪل مهل ايندا آهن



ڪي - گوداوري سرما (K. Godawari Sarma): تيليگو زبان جو نمائنده شاعر.

فاروق نافذ ڪئمليبيِل

ترڪي (ترڪي)

مسافر ۽ گاڏيءَ وارو

گھر کان ڏور
ڪيڏي اوندھ آھي!
سڪ ڪيڏو سور ٿي ڏي!
گاڏيءَ وارا!
هي رستا ڪٿي ختم ٿيندا؟
مون ساري ڄمار
انتظار ڪيو آھي
ڪنھن به نه ٻڌايو
تہ اڃا ڪيترا ورھيه ائين گھارڻو پوندو

گاڏي تڪي ڪاھ
جيئن اُتي جلدي پھچون
جيئن منھنجي محبوبا کي
گھڻو وقت اوسيئڙو نه ڪرڻو پوي
— منھنجا درد ايترا بي انت آھن
جيترا هي روڊ جن تي مان پتڪان پيو
جيڪڏھن ڪو منھنجو اوسيئڙو ڪري ٿو
تہ پوءِ ڪافي دير ٿي ويئي آھي

فاروق نافذ ڪئمليبيِل (Faruk Nafiz Camlibel: 1898-1973): ترڪي ۽ جو اھم شاعرن جي

گروھ جو ھڪ رڪن، جنھن پنھنجي شاعريءَ ۾ لوڪ بحر استعمال ڪيو آھي.

هڪ ڀيرو جيڪر ڳوٺ کي

سج ۾ جرڪندو ڏسان

اندر ۾ ڀرندڙ آوي

جيڪر ٿڌي ٿي پوي

— تنهنجن رستن

تنهنجن لڙڪن جي جيڪر پڇاڻي ٿي پوي

ته مان

جيڪر پنهنجي بي قسمت رستي تي

هميشه لاءِ جھومندو رهان.



اڃ آچر آهي

اڃ آچر آهي
اڃ، پهريون ڀيرو
انهن مون کي سج جي روشنيءَ ۾ آندو
۽ پهريون ڀيرو پنهنجي ڄمار ۾
مون آسمان ڏٺو
عجب ڪاڌم ته ايترو ڏور
۽ ايترو نيرو
۽ ايترو وصال
مان بنا چرپر جي
بينور هيس
۽ احترام وڃان
ڪاري ڌرتيءَ تي ويهي رهيس
پٽ سان پٽ پراڻي

ناظم حڪمت (Nazim Hikmet-1902-1963): جنم سالونیکا ۾ ٿيس. 1917ع ۾ هبيلي نپول اڪيڊميءَ ۾ گهڙيو ۽ استنبول مان اتحادي قبضي مان 1921ع ۾ اناطوليه ڏانهن پهچي نڪتو. 1922ع ۾ ماسڪو پهتو، جتي يونيورسٽي آف ايسٽ ۾ تعليم حاصل ڪيائين. 1925ع جي وچ ۾، هو ترڪيءَ ۾ موٽي آيو ۽ 1951ع ۾ آخر خير آباد ڪيائين. هو ڪميونسٽ هجڻ جي الزام هيٺ جيل ويو. سندس پهريون ڪتاب "8-5 Lines"، 1929ع ۾ شايع ٿيو. هڪ ٻئي پٺيان پنهنجن شعري مجموعن ۾ هن سڀ کان وڌيڪ پنهنجي وطن کي اوليت ڏني. موت کان پوءِ به سندس زندگيءَ جي پورهئي کي سندس ڪرشماتي شخصيت کان جدا نٿو ڪري سگهجي.

هائي موت جو به خيال نه اٿم

نه وري آزاديءَ جو،

زال جو،

ڌرتيءَ جو،

سج جو،

۽ نه ئي پنهنجو...

مان خوش آهيان.



جاهيت ڪُليبي

ترڪي (ترڪي)

پهريون آڌ

ويھين صديءَ جو پهريون آڌ

موت جو دور هو

ظلم جو دور هو

ڪوڙ جو دور هو

ويھين صديءَ جي ماڻھن

ڦاھيون ڏنيون ۽ ڪنڌ ڪُنا

جيلن ۾ لاشن جون ستيون ٺاھيون

۽ دريائن انھن جو رت پيتو

انھن ٻارن کي رٿاڙيو

عورتن سان زوري ڪئي

انھن تي ويھين صديءَ ئي روئندي

ٻيو ڪير روئندو.



جاهت ڪُليبي (Cahit Kulebi): جنم 1917ع توڙڪت جي ڀرسان هڪ ڳوٺ ۾ ڄائو. اناطوليہ جي نظارن ۽ آوازن سندس شاعريءَ لاءِ مواد مهيا ڪيو. سندس پسنديدہ ترڪي شاعر ڪارا ڪوڱلان ۽ پرڏيھي شاعر ڳئلامي اڀولي ناتر آھن.

ترکي (ترکي)

نيسپ فاضل کسا کوریک

ريلوي اسٽيشن

هتي سڪڻ ڏينهن جي
طوالت آهي
جڏهن اوچتو گھنڊ وڃي ٿو ته
موت جي اداس گھنڊ کان به
وڌيڪ چينڊڙ آهي

پوءِ سڀني واڃت ڪري
تتل آواز ۾ چوي ٿي
اڄ کين اوهان ڄاتو
تنهنڪري وڃن ٿا
سڀاڻي اهي وري واپس ايندا
اجنبی بنجي

اڪيون

ماضيءَ مان اينگھجندي
اڪين کان سواءِ ٻيو ڪجهه نه رهيو آهي
اسان جو سڀڪجهه مري ويو آهي

نيسپ فاضل کسا کوریک (Necip Fazıl Kısakürek): جنم 1905ع. شاعر، ناٽڪ ڪار ۽ صحافي. اول هو بادليثري روايت موجب پوهيميشن هو، پر پوءِ صوفي ازم ڏانهن لڙيو. سياست ۾ هو انتهاپسندهن حلقن جو حمايتي رهيو ۽ "Buyuk Dago" (The Great Earth) مخزن شايع ڪيائين. سندس نظمن ۾ اسلوب ۽ مواد جو گھڻو دخل آهي.

پوءِ اڃا تائين ڇو جيئريون آهن؟
 آسمانن ۾ ستارن وانگر
 ڀولار ۾ ٽمڪندي
 موت جي خشڪ مغز ۾
 گهروي رهيون آهن اڪيون.



گولتين آڪن

ترڪي (ترڪي)

جيڪي اوچاين تي رهن ٿا

هنن اسان جا گهر اوچاين تي جوڙيا آهن
انهن جو بالڪنيون ڊگهيون آهن
پاڻي هيٺ وهي ٿو
وڻن کان به هيٺ

هنن اسان جا گهر اوچاين تي جوڙيا آهن
ڏهه هزار ڏاڪا چڙهڻا پون ٿا
نگاهون گهڻو پري نٿيون پهچي سگهن
دوستيون هيٺ رهجي وڃن ٿيون

هنن اسان جا گهر اوچاين تي جوڙيا آهن
شيشي ۽ سيمنٽ ۾ ٻوسا ٿيل
اسان ڄاتو ٿي، پر وساري ويناسين
زمين گهڻو پري آهي
۽ اهي به جيڪي زمين تي رهن ٿا



گولتين آڪن (Gulten Akin): جنم 1933ع ۾ يوزگات ۾ ۽ تعليم انقره ۾. سندس پهريون شعري مجموعو "The Hour of the Winds" 1956ع ۾ شايع ٿيل. هن 1961ع ۾ ترڪش لنگسٽڪ سوسائٽي طرفان ۽ 1971ع ۾ "The Epic of Marasli Okkess" پنهنجي شاعري تي ايوارڊ حاصل ڪيا.

هلو ته ويران جسم پاڻيءَ تي وڇايون!

ڪالھ - اسان ٻنهي
هڪ پُل جلائي هئي
۽ هڪ دريا جي ڪنارن وانگيان
نصيب ورهائين...

جسم ڇنڊيائين
ته هڪ جسم جي ويرانِي ۾ ڪناري تي هئي
۽ ٻئي جسم جي ويرانِي ۾ ڪناري تي...

پوءِ رُتن جڏهن به ڪي گل ڏنا -
ته توڙي اُهي پنهنجي جسم تان هٽائي ڇڏيا،
۽ مون به اُهي رُتن کي موٽائي ڏنا،
۽ ڇڻيل پن وانگر -
ڪيترائي ورهيه اسان پاڻيءَ ۾ وهائي ڇڏيا...

ورهيه خالي ٿي ويا، پر پاڻي نه سُڪو
۽ وهندڙ پاڻيءَ ۾ پياڇولا ته ڏٺائين

امرتا پريتم (Amrita Pritam): جنم 1919ع، گجراتوالا (هاڻي پاڪستان). پنجابي ٻوليءَ جي مشهور
رجسٽرڪار. اٽڪل 24 ناول، 16 شعري مجموعا، 8 ڪهاڻين جا مجموعا ۽ ٻيا ڪتاب شايع ٿيل. آتر ڪٿا
'رسيدِي ٽڪٽ' نالي سان ڇپيل. 1956ع ۾ شعري مجموعي 'سينهوڙي' تي ساهتيه اڪادمي جو انعام مليل.
1998ع ۾ 'جن پٽ' انعام مليل. 'ناگ مٺي' نالي پنجابيءَ ۾ مخزن ايڊٽ ڪندي آهي.

پر چهرانه ڏٺائين
 ۽ انهيءَ کان اڳ
 جو ڪجهه پريان بيهي اسان مٽجي وڃون
 هلو ته ويران جسم پاڻيءَ تي وڃايون!
 تون پنهنجي جسم تي پير رکج
 ۽ آڌ دريا تائين هليو اچج
 مان پنهنجي جسم تي پير رکنديس
 ۽ آڌ دريا چيري
 توسان اچي ملنديس...

مسچتو

زندگيءَ جي اصلي عبارت ڇا هئي؟
 اها ريشمي خيالن جهڙي خوشخط هوندي هئي،
 پر رت جهڙي گرم
 ۽ سڀن جي مَس جي آلي عبارت کي
 جنهن مسچتي سڪايو هو -
 اهو مسچتو مان پڻ آهيان، تون پڻ،
 ڌرتي ۽ سماج پڻ، مذهب ۽ سياست پڻ...
 سو، اصلي عبارت جا اکر -
 جيڪي مسچتي تي هاڻي اُبتا نظر اچن ٿا، مس جي داغ سان،
 انهن کي پنهنجين اکين مان گذاري، ڪجهه سڌو ڪري،
 جيتري به عبارت جڙي، اهي جوڙي سگهجن ٿا
 اها ٻي ڳالهه آهي ته منهنجو هيءُ مسچتو،
 پنجنونجاهه فلانگن جو ٽڪر،
 ۽ اوهان جو انهيءَ کان ڪجهه ننڍو يا انهيءَ جيترو ٿيندو.
 ها، ڌرتي ۽ سماج جو،
 يا مذهب ۽ سياست جو تمام ڊگهو آهي،

پر ڪيترن ئي ٽڪرن ۾ ورهايل
 ۽ انهن جو جيڪڏهن جوڙ- ٽوڙ ڪريون،
 ته لکين ميل ٿين ٿا.
 ها، چوڻ لڳي هئي ته هڪ ڳالهه ۾ اهو مسچتو -
 منهنجو يا توهان جو، يا ڪنهن جو به، ڏاڍو چمتو ڪاري آهي...
 اهو منهنجي اکين ۾ جيڪو اوجاڳو ڏسڻ ۾ اچي ٿو،
 اهو ابتو اکر آهي،
 انهيءَ اکر کي سڌو ڪريان ته ڏسي سگهان ٿي -
 ته منهنجي عمر جو اهو هڪ حسين سڀنو هو
 سو، انهيءَ رات جنهن به مسچتي تي
 جيڪي به اکر آهن -
 اهي اصلي عبارت جا اُبتا اکر آهن.
 اهي اکر جيڪي ڇاتيءَ جي اوندھ آهن،
 اهي سج جي اُس هوندا هئا،
 ۽ روح جو عالم، جيڪو اڪثر دانهن ڪري اُٿي ٿو -
 اهو تڙندڙ گل وانگر خاموش هوندو هو
 هي پيرن جا ڦٽ، رانن جي پياس هوندا هئا
 هي هٿ- تريءَ جون ريكائون،
 ڪمن جون آس هونديون هيون.
 هي مٿي جي ليڪ - جيڪو گھنج نظر اچي ٿو -
 هڪ گھري سوچ وانگر هوندو هو،
 ۽ پٽيهن ڏندن جي وچ ۾ جيڪا ڇپ دٻيل آهي
 اها زندگيءَ کي سڌي سگهي ٿي
 هي ٽٽل ليڪون - ۽ تارن سان ٽڪرائيندڙ دانهون
 ۽ ڌرتيءَ ۽ سماج جا، يا مذهب ۽ سياست جا،
 هي لکين ميل جيڪي مسچتا آهن
 اهي اُبتين ليڪن سان ڪارا ٿيل آهن
 هي سرن تي لتڪيل ڏينهن -

هي ڇاتيءَ ۾ تنندڙ راتيون
 ۽ هر پيڙهيءَ کي ورثي ۾ ملندڙ - زخمن جون ڳالهيون.
 ۽ هي جيڪي جوانين جا بُٺ ۽ وارياسا صحرا آهن
 ۽ انهن ۾ سدا وهندڙ رت جا دريا آهن،
 اهي تڏيون ۽ اُبتيون ليڪون آهن.
 ۽ مسچتا جيڪي ليڪن سان ڪارائيل آهن،
 بس اهي ئي اصلي عبارت جا حوالا آهن،
 اُها اصلي عبارت ته ڪڏهوڪو وڃائجي چڪي آهي...

هُن منهنجي وجود کي چُهيو...!

تنهنجون سارو ٿيون
 گھڻا ڏينهن تيا جو جلاوطن ٿيون
 جيئريون آهن يا مري ويون - ڪا سڌ ناهي

رڳو هڪ پيرو - هڪ اتفاق ٿيو
 خيالن جي رات ڏاڍي گھري هئي
 ۽ ايڏي ماڻ هئي
 جو پن به چري
 ته ورهين جا ڪُن اُڀا ٿين

پوءِ تي پيرا لڳو ڇڻ ڪنهن
 ڇاتيءَ جو در ڪٽڪايو
 ۽ ڊپيل پيرن سان ڇت تي چڙهيو
 ۽ نهن سان پُلين پت کي ڪرڙيو

تي پيرا اُٿي مون ڪٿا چڪاسيا
 اوندهه کي ڇڻ ويو جا سور هئا

هن ڪڏهن ڪجهه ٿي چيو
 ۽ ڪڏهن چپ ٿي ٿي وئي
 ڄڻ پنهنجو آواز ڏندن ۾ ٿي پڪوڙيائين
 ۽ پوءِ جيئري جا ڳنڍي ڪا شيءِ
 ۽ جيئرو جا ڳنڍو آواز!

”مان پراڻهن پنڌ کان آئي آهيان!
 جبلن جي اک کان هن جسم کي لڪائي
 هوريان هوريان آئي آهيان
 سڌ اثر ته تنهنجي دل آباد آهي
 پر ڪٿي ويران اڪيلي ڪا جاءِ منهنجي لاءِ آهي“

”ويراني ڏاڍي آهي پر تون...“
 چرڪي مون چيو:
 ”تون جلاوطن... نه، ڪا جاءِ ناهي
 مان چوان ٿي، ڪا جاءِ ناهي تلاءِ
 هي منهنجي مٿان منهنجي مالڪ جو حڪم آهي.“

۽ پوءِ ڄڻ سموري اوندھ ڏکي وڃي ٿي
 هو پوئتي وري
 پر وڃڻ کان اڳ ڪجهه ويجهو آئي
 ۽ منهنجي وجود کي هڪ ڀيرو ڇهڻائين
 هوريان
 ايئن، جيئن ڪو وطن جي مٽيءَ کي ڇهندو آهي.

ڪُتو

ڪنهن ورهين جي ڳالهه آهي

جڏهن تون ۽ مان ويڙياسين
ڪو پڇتا ٺاهي
رڳو هڪ ڳالهه
ڪجهه سمجهه ۾ نٿي اچي

تو ۽ مون جڏهن موڪلايو پئي
۽ اسان جو گهر وڪامي رهيو هو
رڌڻي جا خالي برتن اڱڻ ۾ پيا هئا
شايد منهنجي يا تنهنجي اکين ۾ ڏسندي
ڪي اُبتا به ٿيا پيا هئا
شايد منهن لڪائي رهيا هئا

دروازي تي هڪ ول هئي، ڪومايل ڪومايل
شايد مون کي ۽ توکي ڪجهه چئي رهي هئي
يا پاڻيءَ جي نلڪي کي طعنو ڏيئي رهي هئي

اهو سڀڪجهه ۽ اهڙوئي
ڪڏهن ياد نٿو اچي
رڳو هڪ ڳالهه ڪجهه گهڻو ياد ايندي آهي
ته هڪ گهڻيءَ جو ڪٿو
ڪيئن ڪجهه سنگهندو
هڪ خالي ڪمري ۾ گهڙي ويو
۽ ڪمري جو در ٻاهران بند ٿي ويو

پوءِ ٽيئن ڏينهن
گهر جو سودو طئه ٿي ويو
۽ ڪنجيون ڏيئي اسان نوٽ ورتا
نئين مالڪ کي ڪُلف جڏهن حوالي ڪياسين.

۽ هڪ هڪ ڪمرو ڏيڪاريو سين
ته هڪ ڪمري ۾ انهيءَ ڪٽي جو لاش هو...

مون کيس پونڪندي ڪڏهن نه ٻڌو
رڳو سندس پوءِ سنگهي هنر
۽ اها ئي پوءِ اڃا به اوچتو
مون کي ڪيترن ئي شين مان ايندي آهي.

ماڻ جي سازش

رات سمهي پيئي آهي
ڪنهن انسان جي ڇاتيءَ ۾ ڪاٺ هنيو آهي
هر چوريءَ کان پيانڪ
اها سڀن جي چوري آهي

چوريءَ جا نشان -
هر ديس جي هر شهر جي
هر سڙڪ تي موجود آهن
هر ڪا اڪ ڏسي نٿي، نه چرڪي ٿي
رڳو هڪ ڪٽي وانگر هڪ زنجير ۾ ٻڌل
ڪنهن وقت ڪنهن جو ڪو نظم پونڪي ٿو.

هڪ ملاقات

ڪيترن ورهين کان پوءِ اوچتو هڪ ملاقات
اسان ٻنهيءَ جو جسم هڪ نظم وانگر ڪٽيو...

سامهون سموري رات هئي
پر اڌ نظم هڪ ڪنڊ ۾ سميتيل رهيو
۽ اڌ نظم ٻيءَ ڪنڊ ۾ سميتيل رهيو

۽ پوءِ صبح ساڄهر
اسان ڪاغذ جي ٽڪرن وانگيان ملياسين
مون پنهنجي هٿ ۾ هن جو هٿ جهليو
هن پنهنجي ٻانهن ۾ منهنجي ٻانهن ورتي

۽ پوءِ اسان ٻئي هڪ سنسر وانگر ڪلياسين
۽ ڪاغذ کي هڪ ٽڌي ميز تي رکي
انهيءَ سموري نظر تي ليڪ ڏيئي ڇڏيسين.

ويراڳ

عرصي کان هڪ ڳالهه هلندي آئي هئي
ته وقت جي طاقت رشوت ڏيندي هئي
تاريخ کان لکي تاريخ جا ورق خريد ڪندي هئي
هوءَ جڏهن به گهرندي هئي
ڪجهه ستون بدلائيندي هئي ۽ ڪجهه مٽائيندي هئي
تاريخ ڪلندي رهي ناراض ٿيندي رهي
۽ هر تاريخدان کي هو معاف ڪندو رهيو
پر اڄ هو ڏاڍو اداس آهي
سندس هڪ هٿ انهيءَ جو جلد کڻي
ڪجهه ورق ڦاڙي
انهن جي جاءِ تي ڪجهه ٻيا پنا سبي رهيو آهي
۽ تاريخ - ماڻڙي ڪري انهن ورقن مان نڪري
هڪ وڻ جي هيٺان بيهي
سگريٽ پي رهي آهي...



ترلوڪ سنگھ آنند

پنجابي (ڀارت)

سفر کان پوءِ جو سفر

هڪ سڀني جو سفر ته
اسان طنه ڪري ٿي آيا آهيون
بيحد حقيقت جي واديءَ ۾
اڃا اسان ٻئي مڙي اڇون
هاڻي هن گهر جي هوا ٻي آهي
اڃا اسان ٻئي گڏجي
نئين سر
هن گهر کي سڃايون

گهر جي ڀاتين کي ڪارنهن جو لپو ڏيون
ڏکيل سگريٽ مينٽل پيس تي رکي
اُن تي ايش توي اُبتور ڪون
۽ ميٺ بتيون ٻاري
ڇت کان هيٺ لتڪايون
فرش جي بلڪل وچ تي
پنهنجا گندا پينل ڪڇا
سڪڻ لاءِ وجهون

جنهن آئيني جو پاڻي مري چڪو هجي
اهو
ڪمري ۾ لتڪايون
اُن ۾ پنهنجا چهر اُپسون
پوءِ ڏسون اسان هڪ ٻئي کي
ڪلون ۽ شرمايون



ڊاڪٽر ترلوڪ سنگھ آنند (Dr. Triloksingh Anand): پنجابي ۽ جو سھيوگي شاعر ۽ ڪھاڻيڪار.
هڪ شعري مجموعو 'اڪ بيان حلفيہ' شايع ٿيل. پنجاب يونيورسٽي پٽيالا ۾ پنجابي ۽ جو اُستاد.

پولار ۾ قهليل هتَ

هوا سان ڪريل ميوي وانگر
تون جڏهن مون کي مليڻءِ
تڏهن ايئن لڳو هوم
جڻ سڀ رتوڻ منهنجي مٺ ۾ هيون

وقت هو ڪاڪ جو گهوڙو
۽ ڏينهن پاڻي - قوتن جهڙا
سرسبز ڪيٽن ۾ چرندڙ اُٺ مون کي
گلن جون وليون لڳا هئا.
بنا پڻ جي تارين تي ڪُلهندڙ اڪيون
سائي برسات ۾ اٽڪيل بوندون لڳيون هيون
ٽانڊاڻا لفظ لڳا هئا،
پوپٽ - ٻول جهڙو ڪر تنهنجا هئا

مان پنهنجي مرضي پٽاندڙ
مٺ کولي ڏندو هئس جنهن ۾ سج بند هوندو هو
جڏهن تون اڪيون ٻوٽي ڇڏيندي هئينءِ
ته مان مٺ بند ڪري ڇڏيندو هوس

جگتار (Jagar): مشهور پنجابي شاعر، گيتڪار، غزلڪار. ڪئين شعري مجموعا شايع ٿيل. اردو - فارسيءَ ۾. ڄائو. اسڪول ۾ پڙهائڻ کان پوءِ چئن سالن کان گورنمينٽ ڪاليج هوشييارپور ۾ پنجابي شعبي سان وابستہ. پاڪستان جي پنجابي ساهت تي ڪم ڪري چڪو آهي.

۽ جڏهن هڪ ڏينهن
 هوا ۾ اڏرندڙ پڻ وانگر
 تون هلي وئين ۽ ۽ نه موٽين ۽
 لڳو هوم ته منهنجي مٺ ۾
 نه موسم آهي، نه سج.

سڪل وٺ تي ساروڻي بڻجي
 لتڪيل اک وانگر هاڻي ته
 مان هڪ مسرت پري اک آهيان،
 پولار ۾ ڦهليل هٿ آهيان

هوا گذريل وقت جي ياد آڻي
 جسم مان ائين گذري ٿي
 جيئن ڪو پڪي سُرنگهه مان پڇي نڪري.

●●●

سُرجيت پاتر

پنجابي (ڀارت)

ڳالهه ٻولھ

منهنجي لاءِ صليب ٺاهيندين، يا رباب
سائين! يا هيئن ئي مان بيٺو رهان ساري ڄمار
ٺاهيندو رهان پنن ۽ موسمن جو حساب ڪتاب
سائين، ڪو ته ڏي جواب

مون کي ڪهڙي سڌ،
مون کي ٺاهي فرق
مان ته پاڻ آهيان هڪ وڻ
تون هيئن ڪر، اڄ جي اخبار ڏس

اخبار ۾ ڪجهه ٺاهي، ڪريل پن آهن

پوءِ ڪو ڪتاب ڏس
ڪتاب ۾ بچ آهن

ته پوءِ سوچ، سوچ ۾ گهاءُ آهن
ڏندن جا نشان آهن،
واٽهڙن جي پيرن جا نشان آهن

سُرجيت پاتر (Surjeet Patar): نئين پيڙهيءَ جي سهيوڳي پنجابي شاعرا، غزلڪار. ’هوا وچ لکي حرف‘
غزلن جو مجموعو شايع ٿيل. لڏپلاڻ ۾ پنجاب انگريڪلچر يونيورسٽي ۽ ڀرپولي، ساهت ۽ ڪلچر جي شعبي سان
وابسته.

يا منهنجا نهن، جيڪي پنهنجي بچاءَ لاءِ
ڌرتيءَ جي ڇاتيءَ ۾ ڪوڙيا هنم

سوج، سوج ۽ سوج - سوج ۾ قيد آهي
لڳي ٿو ڌرتيءَ سان ٻڌل آهيان مان

وڃ، وڃي ٿئي پڻ.

ٿئي به ڇا ٿيندو؟ هڪ ئي ته ڪائنات آهي
وڻ نه ته رک سهي، رک نه ته ريتي سهي
ريتِي نه ته ٻاڳ سهي

ڇڳو پوءِ ماڻ ڪر

مان ڪڏهن ٿو ڪڇان،
هي ته منهنجا خط آهن
- هوا ۾ لڏن ٿا!



بڪاريءَ جو ڪشڪول

۽ مون پنهنجي من کي بڪاريءَ جو ڪشڪول ڪيو
 در در تان علم جي بيڪ پٺي:
 علم جي گهرن تان جيڪي ٽڪر ملير
 تن سان پنهنجو پيٽ ڀريو
 ڏاڍو ڏوٿيو.
 ڪنڌ ايمان وڃان اُڀو ٿي ويو،
 مان وڏو عالم ٿي ويو هوس.
 بادلن تائين پهچڻ جي ڪوشش ڪيم،
 پر ڌرتيءَ تي ئي ٿاڀڙجي پيس.
 هڪ ڏينهن پنهنجي مرشد وٽ حاضر ٿيس
 ۽ پنهنجو ڪشڪول کيس پيش ڪيم.
 ”گند،“ هن چيو، ”گند“
 ۽ اونڌو ڪري ڇڏيائين
 منهنجا ميڙيل ٽڪر سڀ اڇلي ڇڏيائين،
 واريءَ سان ڪشڪول مائجي
 پاڻيءَ سان وڇيري
 علم جي گند کان پاڪ صاف ڪري ڇڏيائين.



وير سنگھ (Veersingh): جنم 1872ع ۾ امرتسر ۾ ٿيس. کيس جديد پنجابيءَ جو ابو مڃيو ويو آهي. اڻويهن صديءَ جي پڇاڙيءَ وارن ڏهاڪن ۾ ساهت جڳت ۾ داخل ٿيو. سندس اٺ شعري مجموعا ۽ چار ناول شايع ٿيل آهن. انهن ڪتابن کان سواءِ هن سوانحي ۽ عالماڻا ڪتاب پڻ لکيا آهن. سندس ادبي خدمتن جي موت ۾ سندس ڪتاب ”ميري سائين جيسو“ تي کيس 1955ع ۾ ساهت ڪامي طرفان ايوارڊ سان نوازيو ويو. سندس ديهانت 10 جولاءِ 1957ع تي امرتسر ۾ ٿيو.

امرڃيت ڪونڪي

پنجابي (ڀارت)

هل ته گهر موٽي هلون

هر روز ٻارن وانگر ضد نه ڪبو آهي
هل ته گهر موٽي هلون

ڏس ٿو آهڻ روڊ تي روشنيون -
سُٽا پيا آهڻ سڀ فُٽپاٽ
رات جي حوسي عورت لاهي رهي آهي
تهه در تهه پنهنجو ريشمي لباس
ڪنهن جي ڪڙي ۾ آهين تون
روڊ اندر روڊ، اونڌا هي اندر اونڌا هي
ڪجهه به نه موٽندو هاڻي
هل پٿرن سان پريت لڳاءُ...

.....

.....

.....

اڪيلو ڇڏي ڏي مون کي تون موٽي وڃ
مان به موٽي ايندس ڪڏهن نه ڪڏهن
ثابت يا اڏورو

انهن ڪٿي به نه پهچي سگهندڙ رستن کان بچي

امرڃيت ڪونڪي (Amarjeet Konke): پنجابي زبان جو مشهور شاعر. تعليم: ايم. اي. 'دائريان دي
قبر وچون'، 1986ع کي چوٿين ڪوٽا، ۽ 'نرمانا کي تلاش' شايع ٿيل. لڌيانه ۾ استاد.

هي جيڪا منهنجي اندر ۾
هڪ مسلسل لڙائي جاري آهي
مون کي ناهي خبر
انهيءَ جو ڪير هيو آهي
ڪيرولين

ها زخميو هر پيري مان ئي آهيان
گهمسان جي انهيءَ لڙائي ۾

.....

منهنجن پيرن ۾ ڪو چڪر آهي
مون کي نه گهر ۾ چئن آهي
نه ٻاهر آرام
گهر وڃان ٿو ته بيزار ٿي موٽي اچان ٿو
پراڻي شهر ۾ بي سبب دير تائين رستن سان
چنبڙيل رهان ٿو

يادن ۾ جيڪي پراڻا پاڇولا خاموش ڦرندا آهن
انهن ٽڪل نظرن لاءِ مان چانوَن بنجي نه سگهيس
چانوَن بنجي سگهيس ٿي -
پر تڏهن گهر جي ڀت ٽمندي هئي
چانوَن ٿي سگهان ٿو
پر پير ويڳاڻن روڊن ۾ ڦاسي ويا آهن.
روڊن جاري ٿي
پيرن کي غلط جوڙ ۾ وجهي ڇڏيو آهي.

پوڙهي پيءُ، جڏهن چاهيو
ته مان وٽس ويهي
ڍنگ جي ڪا ڳالهه ڪريان
ته کيس مهيني کان پوءِ ڏنل

ڪُجهه رهين جي آڪڙ ۾ گهيرجي
 ڌيان پنهنجي ۾ مست رهيس
 امان چاهيو - رڌڻي ۾ ويهي تازي ماني ڪارائڻ
 ۽ مان
 لڙڪن جي چُلَهه جي دونهين ۾ لڪائي ڳڙڪائيندو رهيس
 سادي سڙيءَ سان گرهه
 رولاڪي پيرن ۾ پيري
 مان مانيءَ جي ڳولا ۾ رهيس
 ماني ملي ته
 موت جي فلسفي ۾ گهيرجي ويو آهيان

منهنجي مٽيءَ ۾ وهندڙ نديون
 ڌارين جي پُلين هيٺان گذرن ٿيون
 انهن جي چل چل منهنجي ناهي

مون وٽ پنهنجي ويراني باقي آهي
 يا پنهنجي آڪاش جي سڄ مون وٽ آهي

منهنجي جهنگ ۾ هر هر جيڪي نالا گونجن ٿا
 انهن جو عنوان ڪڏهن مون رجائجي ويل جي تلاش نه رکيو.



ارنيسٽ ٽولر

جرمن (جرمني)

جيئرن جي نالي

ڪنڊن توکي نٿو سونهي
۽ نه ٿي سونهي توکي دير
توڪي جيڪا وراثت ملي آهي
لتڙيل آهي رت سان
وهيو آهي جيڪو تنهنجي پاءُ جي دل مان...
پريل گلو
تڪي ٿوراھ - توهان سڀن جي
وقت جو تمام ڳورو بار
توهان جي سرن تي اچي ٿو آهي
کولي ڇڏيو طاق
بند آهن ڪپاٽ
چمڪندڙ صبح جا!



ارنيسٽ ٽولر: 1893ع ۾ جنم. جرمن زبان جو شاعر ۽ ناٽڪ ڪار. پهرين عظيم جنگ ۾ قتيبي پيو.
سماجواڊي خيالن جو اثر ٿيس. 1939ع ۾ خودڪشي ڪيائين.

هڪ نظم جي پڇاڙي

هر سانجھي پنهنجي دريءَ ۾ بيٺو مان
عجيب حادثن
آپسوئن جي آشا ڪريان ٿو
هڪ ريتيهاڻو واپوڙو
ڳلن ۾ گهمريون کائيندو رهي ٿو
۽ رات جو
ست رنگو جهولو جهولڻ لڳي ٿو...



يُوكيو مَشِيما (Yukio Mishima): 1925ع ۾ ٽوڪيو ۾ جنم. سندس اصل نالو - Kimitake Hi-raoka هو. کيس اولھ جي روايت جو چيان جو جديد ناول نگار مڃيو وڃي ٿو. وٽس هڪ لحاظ کان قديم ۽ جديد سھيوڳي ادب جو امتزاج ملي ٿو. کيس عام طور تي چيان جي 'گم ٿيل پيوھي' جي آواز طور سڃاڻپ حاصل آھي. چيان جي هن ڪھاڻيڪار، ناول نگار ۽ فلمساز پنھنجين تخليقن ۾ خودڪشيءَ کي اڀاريو آھي ۽ نيٺ 1970ع ۾ پاڻ بہ خودڪشي ڪيائين.

هڪ جيل ڊائري - هڪ نظم

ڪنن ۾ آواز پُري ٿو -
 جڏهن سج جي گرمي ۽ تارن پري چاندوڪي
 اسان وٽان لنگهي وڃي ٿي - لنگهي وڃي ٿي
 ته آتما ڪيڏو نه خوشيءَ وڃان اڏامي ٿي.
 اوچي آسمان ۾ - کليل آسمان ۾
 جتي رات جي اونداهي نٿي هجي
 رڳو ڏينهن جو اُجالو ٿو هجي - رڳو اُجالو...
 ٻه شخص ڪٿي اهو موت جو گيت پيا ڳائين
 پر اُتي رڳو اُهي آهن؛ ۽ مان.
 اي معزز لوڪو! مان اڃا مٿو ناهيان، جيئرو آهيان
 مون کي هينئر نه دفنايو،
 اهي منهنجو آواز ٻڌي نٿا سگهن
 ڇا مان سچ پچ مري ويو آهيان؟
 ڇا منهنجو جسم ائين ئي اوندو پيو هوندو
 ۽ مان پنهنجو پاڻ کي دفناڻ جڏي ڏسندو رهندس؟...
 منهنجي ڪوٺڙيءَ کان ٻاهر جرمن سنٽري گهمڻ پيا
 ۽ ٻاهر ڪٿي سياستدان ويساهه گهاتيءَ جا ڏاڳا ائين پيا.

جوليس فيوچڪ (Julius Fuchik-1903-1943): هي صحافي ليکڪ 1903ع ۾ ڄائو هو. سياسي نظرين جي ڪري، ڪيترا ئي ڀيرا جيل ۾ وڃڻو پيس. 'جيڪوسلوواڪيا تي نازين جي حڪمراني دوران 8 سيپٽمبر 1943ع تي کيس گولي هڻي ماريو ويو. "قاسي ۽ جي تختي تان" جيل جي ادب جون اهي ساروئيون آهن، جيڪي هن قاسي ۽ جي تختي جي ڄاڻو هيٺ لکيون هيون، جيڪي سندس موت کان پوءِ گڏ ڪيون ويون. جتي هو هڪ مفڪر هو اُتي ڌرتيءَ سان پيار ڪندڙ هڪ شاعر به هو. سندس نشر به نظم جهڙو گهرو آهي.

ماڻهن جون اڪيون ڪولڻ لاءِ ڪيترين صدين جي ضرورت ٿيندي؟
 اڳيرو ٿيڻ لاءِ انسان جيلن جون ڪيتريون ڪوٽيون پار ڪري چڪو آهي.
 ۽ ڪيتريون اڃا پار ڪرڻيون اٿن؟...
 بهادرن جي خاندانن جا خاندان ماري ويا آهن
 انهن مان ڪنهن هڪ کي پيار ڪرڻ لاءِ چونڊيو
 انهن لاءِ نيڪ انهيءَ مان کي محسوس ڪجو
 جيئن توهان ڪنهن انهيءَ وڏي ماڻهوءَ لاءِ محسوس ڪيو هجي...
 جيڪو مستقبل جي ساڌنا ۾ جيئرو رهيو هجي...
 اهي، اڄ رات منهنجي گُستينا کي
 گيهليندا ڀولندوئي ويندا
 غلاميءَ لاءِ، ٽائيفس سان مرڻ لاءِ.
 هر روز سانجهيءَ جو مان
 هن جا سڀ کان پيارا گيت ڳايان ٿو.
 نيري نيري گاهه جا گيت، گوريلن جا گيت
 ۽ انهيءَ قزاق چوڪريءَ جا گيت،
 جيڪا پنهنجي مڙس سان گڏ
 آزاديءَ جي ويڙهه وڙهندي مارجي ويئي...



تصوير

جنهن کي مان هر هر پيشان ٿي
جنهن ۾ ٻڌي گم ٿي وڃان ٿي
رت جو هڪ ڍڪ آهي دوست
ڏينهن جو هڪ پهر آهي دوست۔

جڏهن اها رت جي هڪ بوند
تنهنجي پگهر سان ملي وڃي ٿي
تڏهن لوه جهڙي منهنجي سگه
پاڻي وانگي وهي وڃي ٿي

اها لوپ ڪهڙو آهي دوست
جڻ جبل جي اوت ۾
رات جو

باهه جي هڪ سرخ چپي
پاڻي جي ڦوٽي جهڙي هلڪي
چپ چاپ وسامي وڃي ٿي
جڻ هي پورو چنڊ

ائين ٿيو هجي جيئن ڪا بيمار عورت.

پدما سچديو (Padama Sachdev): جنم 1940ع، ڄمون، ڊوگريءَ جي مشهور شاعرا. هندي ۽ اڙڙو ۾ به لکندي آهي. ڊوگريءَ ۾ پهرئين شعري مجموعي 'ميري ڪوٽا ميري گيت' تي 1971ع جو ساھتية 'اڪادمي جو انعام مليل. 'گودپري'، 'نھريان گليان'، 'توي تي چنھان'، 'پوتا پوتا نيل'، 'اُتر بھيني'، 'ديوانخانہ'، 'مٽواڙ' (ملاقاتون) 'سبد ملارا' ڇپيل اٿس. اڳ ۾ آڪاش وائي، سان وابستہ. هاڻي دهليءَ ۾ رھي ٿي.

هيءَ ڪهڙي باهه آهي دوست
جيڪا ڪنهن اهڙي جهنگ ۾ لڳي آهي
جنهن جي سڙي وڃڻ جو
ڪنهن کي افسوس ناهي
وسنديءَ ۾ رڳو ايترو چوڻ ٿيو
ته جبلن ۾ باهه لڳي آهي.
اڄ رات ڏاڍي گرمي ٿيندي.

هيءَ عشق ڪهڙو عشق آهي دوست
جنهن جو ڪٿي ڪو ذڪر نه ٿيو
ڄڻ ڪنهن ويرانِي ۾
هڪ هرڙيءَ جي گهر
پهريون لال اڪيون کوليندو آهي
پنهنجي پاڻ کان ڊڄندي
ڪوئي ريڍار
پنهنجي پاڻ کان پڇندو هجي

لوپ اڪين ۾ ائين
وهي رهيو آهي
ڄڻ گايي کان پري رکيل ڳئون جي
اڪين ۾ کير
گايي کي سڏي رهيو هجي
هڪ نئون اڪيلو بادل
سج لهن کان اڳ (ڏسڻ ۾ اچي)
سوڙجي سرخ ملعل جهڙو!

لوپ اهو
غنائن ۾ پليو آهي
نشونشي ۾ ٻڏي ويو آهي
تنهنجي پيار ۾ منهنجي رت جو هيءَ رنگ

ڳاڙهو ٿي ويو آهي
 رت جو هي ڀڳت اهو رنگ آهي، جنهن ۾
 پنهنجون آڱريون ٻوڙي ٻوڙي
 غفاجي ديوار ديوار تي
 مون هڪ تصوير ٺاهي آهي.

گناهه

سج کي چئو اڃ نه اُڀري
 روشنيءَ کي به پاڻ سان کنيو وڃي
 اونڌاهي ٿيڻ ڏي
 چوٽه روشنيءَ ۾ گناهه نٿو ٿي سگهي
 ۽ مان اڃ گناهه ڪرڻ چاهيان ٿي.

ها، اهو گناهه آهي
 اڪيون ٻوٽي انهن سڀني راتين تي ٻيهر هلج
 جيڪي ختم ٿي چڪيون آهن

اڪيون ٻوٽي اهي سڀ ڇهرا ياد ڪج
 جن جا ڇهرا هاڻي مٽجي چڪا آهن
 اڪيون ٻوٽي وري هڪ ڀيرو
 هن کي پاڻ سان گڏ هلڻ لاءِ چئج
 جيڪو پٿر آهي
 پراڻو پير آهي
 ۽ خزاني تي ويٺل نانگ آهي!

همت جي گهڙي

اسان جي ٽڪريءَ جي ساڄي پاسي
 هڪڙو ڪوهه آهي
 اجرو ۽ تار

گدريل ورهيه
 اونهاري کيس انبن جي پور سان
 ڍڪي ڇڏيو هو
 جنهن هڪ گلابي کي پاڻ ڏانهن ڇڪيو هو
 گلابو منجهس ڪري پيو ۽ مري ويو
 اُن کان پوءِ
 ڪوبه انهيءَ ڪوه جو پاڻي ڪونه پيئي

رات جو
 چورن وانگي
 مان سنان ڪندي آهيان
 ٻُڪ ۾ پاڻي پيئندي آهيان
 پر نڪي سڪ گهٽجي ٿي
 نه اُڃ اُجهامي ٿي

ڪوه جي گهري اوندهه ۾
 اُڪنڊ پريا پاڇا
 انهن ڪُنوارين جي اوسيئڙي ۾ آهن
 جن رسي اٽڪائي ڦاهو کاڌو هو
 پر ڪڏهن پاڻي ڀرڻ لاءِ
 واپس نه وريون

ڪوه جي اونڌاهي
 انهيءَ گهڙيءَ جي اوسيئڙي ۾ آهي
 ته سڀني جي سامهون
 منهنجا هٿ
 ڪڏهن ٿا پاڻي پيئڻ لاءِ
 ڏانهس وڌن.



آئينو

ڪير ٿو جهاتي پائي آئيني ۾
ڪنهن جو عڪس آهي اهو؟
منهنجو؟

نه، مان نٿو ٿي سگهان،
مان گياني، داني، پراڪرمي
دنيا جو سچو اُپڪاري
اهو منهنجو عڪس ناهي

هي ڪو چور، ٺڳو
ڊاڪو حملہ آور آهي
هي بي رونق - ڪارو چهرو
(پر)

هن ڪمري ۾ مان ئي اڪيلو
پوءِ هي ڪير جهاتي پائي ٿو
آئيني ۾؟
ڪنهن جو عڪس آهي هي؟
منهنجو؟

نه، مان نٿو ٿي سگهان.

مدوڪر (Madhukar): ڊوگري زبان جو شاعر. اٺيڪ رچنائون ۽ ترجما شايع ٿيل. اٺيڪ صنفن ۾ لکندو آهي.
ڪجهه رچنائون هنديءَ ۾ شايع ٿيل.

منهنجي اک جي اشاري سان
 روز هڪ نئون اتهاس لکيو ويندو آهي
 منهنجي هروڪ تي منزل آهي
 مان بي غرض، بي لاڳ،
 شاعر، ليکڪ
 سموري دنيا مون کي مڃي
 هي منهنجو عڪس ناهي
 هي ڪو دوکيباز، نگ
 ڪوڙو، گوسٽرو
 جنهن جي اکين ۾ چالاڪي
 ڏسجي ٿي
 (پر)
 هن ڪمري ۾
 مان ئي اڪيلو
 پوءِ ڪير ٿو جهاتي پائي
 آئيني ۾؟
 ڪنهن جو عڪس آهي اهو؟
 ها (شايد)
 هي آئينو ئي ميرو آهي
 ڏي هن آئيني کي ڏوئي ڇڏيان
 پر ٻڌ ته
 ڇا پيو چوي هي -
 مون کي ڏوٽڻ کان اڳ، پنهنجي دل کي ڏوٽ!

●●●

ايرڪ اسٽي نس

ڊئنش (ڊينمارڪ)

ڪانڊيرو

تنهنجي چمڙيءَ جون اکيون
تنهنجي جسم جي روشنيءَ جو سيلو
تنهنجي پاڇي جي ملڪيت کي مابين ٿيون
تنهنجو هڳاءُ
ڏونهين ۽ پٿر تي
ليڪو ٿو پائي

چٽيءَ سان هيءَ عورت
ٻڻ هلندڙ وڻ!

ڪالوني

ستن ورهين تائين
مقدر اسان کي
ظلم اسان کي ڏکائيندو رهيو

ستن ورهين تائين،
اسان ۾ ايتري همت نه هئي

ايرڪ اسٽي نس (Eric Stinus): جنم 1934ع. ڊئنش ٻوليءَ جو شاعر، سفرناما لکندڙ، نقاد ۽ مترجم. دنيا گهميو آهي. هن حڪمت، پرڀر چنڊ، خوشونت سنگھ ۽ سيتا ڪاٺ مهاڀيرا کي ڊئنش ۾ ترجمو ڪيو آهي. سندس سفرناما 'The Sun From Behind' ۽ 'Darkness Over Akropolis' مشهور آهن.

جو ٻرندڙ واهڻن جي چوڌاري
ڦيرا ڏيئي افسوس ڪريون

ستن ورهين تائين
آسمان ۾ تارن
ماڻهن جي دعائن بند ٿيڻ جو
انتظار ڪيو

ستن ورهين تائين
ملڪ کي بک ڀڙي ڇڏيو
۽ ڊپ ۾
بڪايل وسري ويا

۽ هاڻي
گهاٽي جهنگ مان
گجگوڙ جا آواز پيا اچن
هڪ تير -
هڪ ترڪش
زمين ۾ پوکجي چڪو آهي.



ماريا گياکوبو

ڊئش (ڊينمارڪ)

زبان

پر ماڻهو -
(جتي ماڻهو آهن)
ماڻهو خوشيءَ وچان رڙيون ڪن ٿا
جڏهن کين
اسيمبليءَ جي عمارتن ۾ سڏيو وڃي ٿو
ماڻهو پڌن ٿا
۽ ڪجهه به نٿا سمجهن
چو جو هو جيڪا زبان پڌن ٿا
اها انهن جي پنهنجي زبان ناهي
ماڻهن جي زبان
چوي ٿي ماني
مانيءَ کي
۽ شراب کي
چوي ٿي شراب
پر اهي شراب چون ٿا
جنهن مان مراد اٿن 'غلامي'
اهي ماني چون ٿا

ماريا گياکوبو (Maria Giacobbo): اٽليءَ جي ليکڪا، نيورو، سارڊينيا ۾ جنم ورتو، خاص ڪري پنهنجن ناولن جي ڪري مشهور آهي، جن تي کيس ڪيترائي ايوارڊ مليا اٿس، جن مان -Premio Vio (1957) ۽ reggio Opera Prima (1967) 'Villa San giovanni' مشهور آهن. هوءَ 1958ع کان ڊينمارڪ ۾ رهندي اچي ۽ سندس شاعريءَ جا ٻه مجموعا ڊئش ٻوليءَ ۾ ڇپيا آهن.

۽ جنهن مان مراد اٿن 'غربت'
 اُهي ماني ۽ شراب چون ٿا
 جنهن جي معنيٰ آهي لڏڻ



۽ تون ڇا چوندين؟

پاٽڙا، اڇ!

هل ته خدا ڏانهن هلون.

جڏهن سندس اڳيان بيهنداسين

ته مان کيس چوندس:

”اي مالڪ، مان نفرت ڪريان ڪين

هُومون کان نفرت ڪن

مان ڪنهن کي ايڏايان ڪين

هُومون کي ڇهڪن سان مارين

مان ڪنهن جي ٻني تڪيان ڪين

هُو منهنجي ٻنيءَ جي تاڙ ۾ رهن

مان ڪنهن تي چٿرون ڪريان ڪين

هُو منهنجن ماڻهن تان توکون ڪن.“

۽ پاٽڙا، تون ڇا چوندين؟



لينگسٽن هيوز

ڊئش (ڊينمارڪ)

گڊو

منهنجو پوڙهو پيءُ گورو
۽ منهنجي پوڙهي ماءُ حبشڻ
پوڙهي کي ڪڏهن ننڍيو اٿم
ته پنهنجا لفظ واپس وٺان ٿو

پوڙهيءَ حبشڻ کي جي ننڍيو اٿم
۽ ڪڏهن کيس چيو اٿم
'وڃي ڏوڙ پاءُ'
ته افسوس اٿم
۽ هاڻي هُنن لاءِ دل صاف اٿم

پوڙهو پيءُ اُوچي عمارت ۾ گذاري ويو
امان لوهي پيڙين ۾ مري ويئي
مان حيران آهيان.
مان ڪٿي مرنديس
مان نه گورو نه ڪارو

ڪاري چوڪريءَ جو گيت

هيٺ ڏاڪڻي رستي تي ڊڪسي ۾

لينگسٽن هيوز (Langston Hughes): جنم 1902ع ۾ ٿيس ۽ 1967ع ۾ گذاري ويو.

(منهنجي دل ٺپوڙي ڇڏي)
 منهنجي ڪاري محبوب کي
 چوراهي تي وٺ ۾ تنگي ڇڏيو اٿن
 هيٺ ڏاکڻي رستي تي ڊکسيءَ ۾
 (جھٽيل جسر هوا ۾ تنگيل)
 گوري پيغمبر عيسيٰ کان پڇيم:
 عبادت جي ضرورت ئي ڪهڙي آهي؟

هيٺ ڏاکڻي رستي تي ڊکسيءَ ۾
 (منهنجي دل چيپاڻي ڇڏي)
 پریت هڪ اگهاڙو پاڇو آهي
 ڳنڍڙيءَ اگهاڙي وٺ جو

آزادي

آزادي نه ايندي
 اڄ، هن سال
 ها!
 ڪڏهن به نه ايندي
 ٺاهه ۽ خوف سان

مون کي اوتروئي حق آهي
 جيترو ٻئي ڪنهن کي
 بيهڻ جو
 پنهنجن ٻن پيرن تي
 ۽ ٻئي جي مالڪ ٿيڻ جو

مان اهو ٻڌي ٿڪجي پيو آهيان:

‘پلي ڳالهه پنهنجو رخ اختيار ڪري
 سپاڻي ٻيو ڏينهن پيو آهي،
 مون کي اها آزادي نه گهرجي.
 جڏهن مان مري ويان
 مان سپاڻي جي مانيءَ تي
 جيئرو رهي نٿو سگهان

آزادي
 مضبوط ٻج آهي
 پوکڻ بيحد ضروري آهي
 مان پڻ هتي ئي رهان ٿو
 مون کي آزادي گهرجي
 بلڪل تو وانگر.

...

پالي مري

ڊئش (ڊينمارڪ)

مان ڪجهه به ناهيان

مان ته ڪجهه به ناهيان
پن چڻ جي ٻڌندڙ سج
مون کان منهنجو نالو ڪسي ورتو آهي.

ڪو فيصلو ڪري وٺ گهو گهيتا
تون اڌ پنهنجي گهر ۾ آهين
۽ اڌ ٻاهر

برف باريءَ ۾
کلندڙ ٻار
پنهنجون ٻئي تريون کولي ڇڏيون
اڇيون ٿيڻ تائين!

هن اڏيءَ هيٺان ستو ٿي بيٺه
پوءِ ساڄي ڦر
جتي ملندڙ
تڙيل بادام جو وڻ

سيٽيل نڪ سان
ڪٿو ٽيليگرام پڙهي ٿو

پالي مري (Pauli Murray): ڊئش زبان جو شاعر.

آلي وٺ جي ٿو ٿي

بهار آئي آهي
پسيل بند جي خوشبو ۾
جو اُس ۾ سڙي پيو

ڪهڙو شهر چڻي
او وحشي هوڙيندڙ بهار برسات
ڪيڏانهن ٿي وڃين؟

کانءُ تيزيءَ سان اُڏريو
چڻي ويو
پويان پنن ۾
هڪل آواز
'کان'



ڊئش (ڊينمارڪ)

گلوريا سي - اوڊن

باغي

جڏهن مان مرنديس
ته مون کي پڪ آهي
جنازوشان سان ڪچندو

پر جاسوس
اها پڪ ڪندا
ته واقعي آئون مٿو آهيان

يارڳو
مصيبت پيدا ڪرڻ جي
ڪوشش ڪئي اتر.



گلوريا سي - اوڊن (Gloria C. Oden): ڊئش زبان جي شاعرا.

بينجامن فيدوئيانو

رومانياڻي (رومانيا)

هڪ سادو سودو گيت

هڪ شام جو مان هليو ويندس
چاڻ نه اٿم ته ڪيڏانهن پيو وڃان
۽ جي اهو وقت جنگ جو هوندو
ته مان ماڻ جي هيٺان ائين دٻجي ويندس
جيئن ڪو مٽيءَ هيٺان دٻجي وڃي...
۽ تون شام جو ايندين ۽ هميشه وانگر
۽ هڪ سرد پاڇو ايندو توسان گڏ
پاڻيءَ ۾ ٻڌندڙ پنن جهڙو
۽ تون سڀڪجهه سمجهي ويندين...
'ڪجهه' منهنجي سر ۾ جلندو رهندو
ڪنهن پهرين ميڻ ٻئي وانگر...
۽ تون ڪنهن کان ڪجهه پڇي نه سگهندين
ته تنهنجا گوڏا، ڪنن جا جهومڪ ۽ حسين روح
اڃا ايڏا ڳورا ڇو آهن...
بس ڇپ چاپ ويٺي رهڻ
نئين راهن، نڪور لفظن کي ڳوليندي رهڻ

بينجامن فيدوئيانو: هي رومانياڻي شاعر 1918ع ۾ ڄائو هو. سندس شاعريءَ جو پهريون مجموعو 'لينڊ اسڪيس' 1930ع ۾ شايع ٿيو هو، پر ادبي ڪيتر بر ايڏي مڃتا نه مليس، جنهن ڪري هو پيرس هليو ويو، جتي هو دادا وادي جي لهر ۾ شامل ٿي ويو ۽ انهيءَ نئين لهر بابت يورپ ۽ لئٽن آمريڪا ۾ ليڪچر ڏيندو رهيو ته کيس اُتي مڃتا به مليس. اُتي هو بينجامن فادين جي نالي سان لکندو هو. فرانسيسي فوج سان وڙهندي، هي شاعر نازين جي ور چڙهي ويو ۽ کيس 1944ع ۾ گيس چيمبر ۾ مڙيو پيو.

شايد تنهنجي اندر
 ڪجهه ٻوڙو ٿي ويو آهي
 يا ڇڻ وڇوڙي جهڙين تيارين ۾ هجي...
 پر انسان جي هڪ رڙ وانگي
 مان توکي پيار ڪريان ٿو
 ۽ هر انهيءَ پٿر سان پيار اٿم
 جتي به هڪ يهوديءَ جو نالو اُڪريل آهي...
 غريبيءَ جي قبرستان ۾
 ماڪيءَ جي مڪين جو مانارو
 جيڪو پري پٿرن تائين ڦهلبو ٿو وڃي...
 اهو عجيب نظارو
 دنيا جو مَرُڙيل نقشو آهي
 مان موت کان هاڻي لڪيل رهي نٿو سگهان.

●●●

وسنت

(1)

ٻوند جيترو پاڻي
ڇهن ڀر جهلي اُت
اڏامندڙ جهرڪي
اونده سان رڱي ڇڏيا ٻئي پڪ

بيزاريءَ مان ٽٽي ڪنڊائين آڪيري ۾
ڦاسجي
ڊنل وٺ
گمبڙن جي پٺل اُداسيءَ کي
جلائي
رڪ ۾ بدلجندڙ
پراڻي ڏينهن جي نڙيءَ ۾ ڦاٿل ڪل.

تازي گاهه ۽ ساهه ۾
ڇڻڳون پيدا ڪندڙ خوشبو
ٽنگڻيءَ تي ڪنبدڙ

مٿي مڌوڪر (Mani Madhukar): جنم 1942ع. هنديءَ ۽ راجسٽانيءَ ۾ هڪجيترو مشهور شاعر، ڪهاڻيڪار ۽ ناٽڪ ڪار. انيڪ هندي ۽ راجسٽاني اخبارن ۽ رسالن جو ايڊيٽر ٿي رهيل. ڊڪشن ساهتيه سنگم، راجسٿان للٽ ڪلا اڪادمي، ساهتيه اڪادمي ۽ ٻين انيڪ انعامن سان نوازييل. ’سفيد ميمڻي‘، ’رس گندرو‘، ’ڀاڱيڙو‘، ’گهاس ڪا گهرانا‘، ’پچلا پهاڙ‘ ۽ ’ڪيلا پولمپورو دلاري پاڻي‘ خاص ڪتاب آهن.

سايون چنريون

هڪ هڪ لفظ جي پويان

پتڪي

مان ٿي وڃي ٿو

منهنجو وقت

منهنجو چهرو

منهنجي مينهن جو پاڻي!

(2)

اڃا به آهي

مڇين وٽ

ڪاٺڇ جو ننڍڙو گهر

اڃا به

مونجهاري ۾

بيٺل آهي

اندر جو رٿ

اڃا به گهوڙا ڍوڙ جي ميدان ۾

ڏکي رهيون آهن

ڪولين جون دلچسپ تنگيون

۽ سپاهيءَ جو ٻڌاڻ

اُس ۾ چمڪائي

ڏيکاري رهيو آهي

پنهنجي ورديءَ جو نوحوان ڪلف

سوراخن مان

پروڻ ٿي ويا آهن

جبلن جاسينا
۽ گولين جو آواز
ڪٿي ٻڌڻ ۾ نٿو اچي
البت کيسي مان ڪڍي رومال
جڏهن مان پيشاني اُگهان ٿو
ته سڀڪجهه ٿي وڃي ٿو
رتورت

اڃا به
بند ڏاکڻين ۽
بند ڪمرن ۾
بند نر-مادين جي
اُڀرندڙ گوشت جي بوءِ

اڃا به ٻارچهي رهيا آهن
چوسي رهيا آهن
ڪپيل آڱوڻا
تتل تاريون
۽ مان وهي رهيو آهيان
پنهنجي اڙڙ جي پاڳل جهرڻي ۾

(3)

ڪجهه به نه ٿيو
اُتي ئي پاڻي آهي
اُتي ئي ڏهڻ آهي
۽ اُتي ئي من
آڪاس جي خلاف
ڪاري ڏانڦي ۾ ڪريل
وقت کي پيئندو رهڻ جي مجبوري

هڪ پيالي جي شڪل ۾
 بينل سج جو لھڻ
 شيشي ۾ باھ
 باھ ۾ شيشو

رڳو درزين وٽ آھي
 ماڻھن جي
 هٿن پيرن جي ماپ
 رڳو عمارتن ۾
 دانھيندڙ ٻيرن کي خبر آھي
 پريم جي بيگار جي معنيٰ

هڪ عياشي پيريل ڪورس
 ڳولي رھيو آھي
 وهنجڻ جي جاين ۾
 سويمور جا اڇا داغ
 ۽ دريا جا گل

ڪجهه بد ٿيو
 صوفي تي ڌوڙ ڪٿي
 چڙهي ويئي بيهودي ڳالھ ٻولھ
 ۽ مان انھن وچ ۾
 هڪ ڪورئيڙي جي چار ۾ ڦاٿل
 سنڀڻن جي
 آخري بنسريءَ کي
 تڪيندو رھيس، رڳو!



چندر پرکاش دیول

راجستانی (پارت)

وصیت

هن پڇاڙيءَ جي وقت

اڄ منهنجا پٽ

منهنجي ڀرسان ويه

ساري سنڀالي ڏيان توکي

پنهنجي سموري وراثت

هيءَ عينڪ

هيءَ ڇٽي

هان وٽ! سنڀال اهي اڏورا سڀنا

۽ اهي پيا اٿئي منهنجي پيرن جا نشان

بيھ بيھ

جتن سان هو بهو سنڀالي وٺج

هيءَ منهنجي اُڄ

ها هاڻي مان مري سگهان ٿو چئن سان

منهنجي پوري ٿي وصيت وڌڻ جي

مون کي خبر آهي پٽ

چندر پرکاش ديول (Chander Prakash Deval): جنم 14 آگسٽ 1949ع. ڳوٺ گوٽيپا، اديه پور. راجستانيءَ جو شاعر. هيل تائين شاعريءَ جا ڪيترائي مجموعا شايع ٿيل. ”ڀاڳي“ شاعريءَ جي مجموعي تي 1979ع جو ساهتيه اڪادميءَ طرفان انعام. جواهر لال نهرو آئروگيان يونيورسٽيءَ اجمير (راجستان) ۾ ملازمت.

جهر ڪيون پنهنجن ٻچن کي
 اک کلندي ئي
 آڪيرن مان ڏيئي ڇڏينديون آهن ڌڪو
 شيون نه ڏينديون آهن
 نه ڏينديون آهن عقل
 نه ڏينديون آهن پنهنجي ڄاڻ
 چو جو ڪين خبر آهي
 ڇٽي ڇٽي
 ته وٽن ناهن
 نه آهي رڪڻ چاهينديون آهن عينڪ
 نه ڇٽي
 نه سڀنا
 نه ئي اُڃ!



بورس پئسترنڪ

روسي (روس)

جدائي

هُو پنهنجي گهر جي ڄاڻڻ تي بيهي
گهر پنهنجو ئي سڃاڻي نه سگهيو
هوءَ اصل اڏامندي پئي وئي
برياديءَ پنهنجو هر هنڌ نشان ڇڏيو

ڪمرن ۾ هر هنڌ ويراني هئي
اکين ۾ لڙڪ تري آيس
کيس ڪو اندازو نه هو
ته ڪيتري تباهي آئي هئي

صبح کان ڪنن ۾ گجگوڙ گونجي هئي
هو ستل آهي يا سپنو پيو ڏسي
سمونڊ جو خيال هر هر چوٽو اچي
آروڪ ٿي سندس من ۾

هوءَ کيس ڪيتري پياري هئي
هر ڳالهه ۾ هر موڙ تي
ڪنارن وانگر،

جن جي گجيءَ جي سموري ليڪ
سمونڊ سان لڳل هوندي آهي

بورس پئسترنڪ (Boris Pasternak-1890-1960): کيس روس جو 'فطرت جو شاعر' ڪوٺيو وڃي ٿو. 1958ع ۾ سندس ناول "ڊاڪٽر زيوواگو" تي ادب جو نوبيل انعام مليس. انهي ناول تي ساڳئي نالي سان فلم پڻ ٺهي، جيڪا نعايت مقبول رهي. هن روس جي استالن جي دورِ حڪومت ۾ پاڻ کي شاعري ۽ ترجمي سان واڳي رکيو.

طوفان کان پوءِ بنسري جو آواز ٻڌي ويو
هن جو چهرو هن جي شڪل
روح جي گهراين ۾ گهڙي وئي

جبل وارن ورهين دوران
جيڪا زندگي سوچي به نه هئي
مون کان گهر ٿي ويئي
سمونڊ جي پيٽ مان آيل
تقدير جي چوليءَ ۾

بي انت مصيبتن وچ ۾
خوف جي ڀرسان گذرندي
چولي کيس کڻي ويئي
۽ پوءِ سچ پچ وٽس ڇڏي ويئي

۽ هاڻي، ڏس هوءَ کيس ڇڏي ويئي
شايد زوري
جدائي ٻنهيءَ کي کائي ويندي
پيڙا ڏند ڪرتي سندس هڏيون کائيندي

۽ هو چوڌاري ناهاري ٿو
جدائي جي گهڙيءَ ۾
هو پنهنجي ڇاتيءَ جا خانا
سڀ هيٺ ڪيرائي ڇڏي ٿو

هو اونڌاهي ٿيڻ تائين چوڌاري ناهاري ٿو
وڪريل ٽڪرا واپس خانن ۾ وجهي ٿو
۽ اهو رستو به جيڪو هن هيٺ کولي ڇڏيو هو
پاڻ کي ايڏائيندي
هو اوچتو سڀڪجهه ڏسي وئي ٿو
۽ ماڻ مٿ ۾ روئي ٿو.



نتاليا گوربنیوسکایا

روسی (روس)

معاف ڪج!

معاف ڪج، معاف ڪج هميشه

جو مان

الوداع چوڻ لائق ناهيان

منهنجا دوست

مان ترسڻ جهڙي به ناهيان

جو مان اڏام وڃ ۾

رڙ ڪري يا سرد آهه پري سگهان

يا پنهنجو رومال ئي لوڙي سگهان.

مان سرد آهه نٿي پريان

جو مان جاڳيل به ناهيان

پنين ۾ پينل اوجو گاهه

ڪيئن ٿو محسوس ڪري

يا سندس ڪهڙو سواد اٿس.



نتاليا گوربنیوسکایا (Natalya Gorbanevskaya): جنم 1936ع. ليننگراڊ يونيورسٽي ۽ مان گريجوئيشن ڪيل. "ٽيڪنيڪل انفرميشن" جي ايڊيٽر ۽ مترجم ٿي رهيل. شهري حقن جي جدوجهد ۾ 1970ع کان 1972ع تائين جيل ۾ رهيل. سندس شاعريءَ ۾ درد، وجودي ۽ اڪيلائيءَ جو عڪس ملي ٿو.

بولت اوکود زهاوا

روسي (روس)

قوڪڻو اُڏامي ويو!

ننڍڙي نينگر روئي ٿي، سندس قوڪڻو اُڏامي ويو
ماڻهو کيس آتت ڏين ٿا، پر قوڪڻو اُڏامي ويو

جوان نينگر روئي ٿي، کير سائس لائون لهي
ماڻهو کيس آتت ڏين ٿا، پر قوڪڻو اُڏامي ويو.

هوءَ روئي ٿي، مڙس سائس بي وفائي ڪئي
ماڻهو کيس آتت ڏين ٿا، پر قوڪڻو اُڏامي ويو.

ڏاڏي روئي ٿي، جيون هيٿرو ٿوروڙو
قوڪڻو موٽي آيو، آڪاس نيرو ٿي ويو.



بولت اوکود زهاوا (Bulat Okudzhava): جنم 1924ع. آرمينيائي ۽ جارجيائي نسل جو هي شاعر
روسيءَ ۾ لکندو آهي. هو پنهنجي مخصوص اسلوب سبب سڃاتو وڃي ٿو. کيس غير معمولي ۽ اهم شاعر جي
حيثيت حاصل آهي.

گيت ڏانهن

جيئن جاڳين ته جاڳ منهنجي اندر ۾
منهنجي اندر جي سردخاني ۾
بي آواز گهرائي ۾

مان لفظن جي بيڪ نٿي پنان
پر ڏينم رڳو هلڪو اشارو
ته جيئري ٿي پوان

گهڻو ڪٿي نه —
فقط هڪڙو پل ڏينم
نظم ڪٿي نه
رڳو سرد آه ڏينم
رڳو هڪ دانهن يا هڪ فرياد
رڳو هڪ پڻڪو
يا رڳو ورلاپ
رڳو توکي ويڙهيل زنجير جو
هڪ ڪڙڪو



اولگا برگالٽز (Olga Berggolts): جنم 1910ع. ننگراڊ جي هن شاعرا جي شاعريءَ ۾ درد جو گهرو
احساس ملي ٿو.

ولادِ مير ماياكوسڪي

روسي (روس)

مان پيار ڪريان ٿو

مون کي سڏ آهي
جتي ٻين کي دل ٿي هجي
سڀني ۾ —
جيئن سڀني کي سڏ آهي
پر منهنجو وارو آيو
ته رڃنا جو وڳيان پاڳل ٿي پيو
مان سمورو دل بڻجي ويس
۽ سموري جسم ۾ ڌڙڪڻ لڳس

پاڻ

هميشه چمڪڻ
۽ هر جاءِ چمڪڻ
۽ انت تائين چمڪڻ
اها سچ جي ڪرت آهي
— ۽ منهنجي به.

ولادِ مير ماياكوسڪي (Vladimir Mayakovsky): روس جي هن شاعر 1893ع ۾ جنم ورتو. هن روس جي انقلابي شاعريءَ جي لهر ’فيوچرزم‘ جي اثر هيٺ قديم جي پاڙ پئي. نئون شعور پيدا ڪرڻ چاهيو ٿي ۽ انهيءَ جي اثر هيٺ گهڻي نظر ۽ ناٽڪ لکيا پر تصوراتي آزاديءَ جي عمل ۾ آيل روپ مان هو مايوس ٿي ويو ۽ 1930ع ۾ خودڪشي ڪيائين.

ڇپ پوءِ ڳائيندا زندگيءَ جو گيت!

بوندن سان پينل شام
 بادلن جي گهيريل پيڙ
 تڪل تڪل سمهيل مزدور
 ساڻ ستي آهي سندن اندر جي پيڙا.
 بوندن چيڙي پاڻ ۾ ڳالهه —
 ڏس، پراڻي گاڏي جا ڦيٽا
 ڪيئن ٿا ٺاهين نئين راهه!
 ورڪا- ڌارائون ڇوڻ ٿيون سڀن کي وسار —
 چئن ورهين کان پوءِ
 هن ڌرتيءَ تي ڪڙندا واڙيءَ ۾ گل.

ورڪا جون اهي ڊگهيون تارون
 ڪري ويون اونڌا هي رات
 وسامي ويون آليون ڪاٺيون —
 ڏيئي اُٿندڙ شعلا
 چڙهي ويون سياري جي بات.
 گپ جي آلاڻ سان باهه وٺي ٿڌي ٿي
 چئن ورهين کان پوءِ
 هن ڌرتيءَ تي ڪڙندا واڙيءَ ۾ گل.

سُهڻيل ٿڌن، نيرن چپن مان اچي ٿو آواز —
 سرجيندڙ انهن هڻن جي رکڻي آهي لڄ
 اندر آلاڻ پيريل،
 ٻاهر سوڪهڙي جو تھ
 ڄمي ويئي آهي هر شيءِ
 ۽ مانيءَ کي به گھيريو آهي ٻوڏ

جا اک چيري اوندهه جو پردو
جنهن جو سهي نه سگهي تاب
اها ملڪيت کي ڪيئن ڪندي —
اچي کي ڪارو؟
پٿرن جي مڙي تي نوڪ —
وک وک تي جنهن رکيو آهي بارود!

تڪو، ڌرتيءَ کي چيريندو، ڪوئل وانگيان،
پوءِ گڏجي چين تي اُڀريو
توتاري جو گيت...

اي سج!
ڌرتيءَ جي سرد اڱڻ کي ڪوسو ڪر
بئين جي منهن ۾ جڳمڳ ڄمڪ، سؤ سؤ چلڻ جي.

ڇت پنهنجي هٿ سان ڇانو ڪندي، ڪتوري پريل ماني،
سونهن جي ڪُڪ مان هڪ دري اسان کولي ڇڏيون
هن ٽائيگي نديءَ جون لهرون
ڌرتيءَ کي ڏين ٿيون رستو
اڄ ڪا اک اونداهيءَ جا چوڏا لاهيندي
۽ مثل ۾ پوندو ساھ.

ڌرتيءَ جي ڇاتي ڌڙڪندي، اُڀرندو هڪ شهر
سرد ويران خالي اڱڻ ۾ — سونهن ڌريندي پير
مستقبل جا ڇپ پوءِ ڳائيندا زندگيءَ جو گيت
چئن ورهين کانپوءِ
هن ڌرتيءَ تي ڪڙندا واڙيءَ ۾ گل.



ڪانسٽنٽن ونشينڪن

روسي (روس)

واپسي

مڙس جنگ تان موٽيو هو
مٺ مائٽ ۽ مهمان هليا ويا هئا
نرم بستري ۾ اڳيئي لپٽيل
هو پنهنجي زال جي قدمن جي آهٽ ٻڌي رهيو هو

هن پليٽون گڏ ڪري هڪ پاسي رکيون
جھڪي سگريٽن جا ٽوٽا گڏ ڪيائين
ٽيبل تان ڪپڙو لاٿائين
۽ پوءِ چپ ڪيائين

هن اوڙ ڪوٽ جي ٻانهن کي ڇهيو
۽ ان سان پنهنجو ڳل ڊٻايائين
ته اهو لڙي پيو
پوءِ پراڻي وارڊ روب وٽان لنگهي
بتي بند ڪري
ڪپڙا لاهي ڇڏيائين

ڪانسٽنٽن ونشينڪن (Konstantin Vanshenkin): 1925ع ۾ ماسڪو ۾ جنم. 1942-44ع کان يوڪرين محاذ تي فوج ۾ نوڪري ڪيائين. 1951ع ۾ سندس پهريون مجموعو 'Song About the Guards' شايع ٿيو. سندس نظم 1965ع ۾ شايع ٿيا، جيڪي موسيقيءَ سان هم آهنگ هئڻ ڪري گهڻو مقبول ٿيا. سندس محبت جا نظم ايڏا گهرا ناهن، پر موقف جي مناسبت سان حقيقي آهن.

محبت جي پڄاڻي

هنن هڪٻئي کي هر طرح
خوش ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي
هاڻي وقتي جدائي مهل
هنن پنهنجون تصويرون
هڪ ٻئي کي واپس ڪيون
جن جي هاڻي ڪا ضرورت نه هئي.

هن کيس اُهي سمورا تحفا واپس ڪيا
جيڪي هن کيس ڏنا هئا —

منڊي ۽ بروج
۽ پوءِ هن اُهي سڀ ملائمر خط واپس ڪيا
جن ۾ دل پڄاڻن جي قوت هئي.

جدائيءَ جي اهڙين گهڙين ۾
پسڻين ۽ پڙاڏجندڙ ڀتين وچ ۾
هنن پنهنجون ترافيون هڪ ٻئي کي ڏنيون
جنگي قيدين وانگر.

وري اسان هڪ ٻئي جي پاسي ۾ ويٺا آهيون
وري هڪ ٻئي جا هٿ جهليا اٿئون
پوءِ به تون پنهنجين خالي اکين سان
ڏور ڏور گهري رهي آهين.

”ڪٿي گم آهين هينئر؟“ مون پڇيو
پر تون ڪو جواب نٿي ڏين،
”تون ڪنهن سان گڏ آهين؟ تون منهنجي سوال
جو جواب نٿو ڏين“

منهنجي دانهن ۾ سڀ ڪجهه هليو وڃي ٿو
 منهنجو سمورو رنج
 ۾ اهو سڀ اجايو آهي
 جهنگل جي گهاٽاڻ ۾ جيڪي ماڻهو غائب ٿي ويا
 اهي اڏامندڙ جهاز دانهن واکا ڪن ٿا.

●●●

اٽنا اخماتووا

روسي (روس)

پڙاڏو

ماضيءَ ڏانهن ويندڙ رستا
گهڻو اڳ بند ٿي ويا آهن
۽ هاڻي منهنجي لاءِ ماضي ڇا آهي؟
اُتي ڇا آهي؟
رٿاڻا تختا،
يا سِرَن سان چٽيل دروازا،
يا هڪ پڙاڏو
جيڪو اڃا تائين ماڻ نه ٿي سگهيو آهي
جيتوڻيڪ مان گهڻو ئي چوان ٿي...
ساڳي ڪار آهي پڙاڏي سان
جيڪو آئون پنهنجي دل ۾ ڪٿي هلاڻ ٿي.



اٽنا اخماتووا (Anna Akhmatova- 1889-1966): 1910ع کان 1920ع دوران جي شاعرن کي 'پهرين پيڙهيءَ' ۾ شمار ڪيو ويندو آهي. اُهي استالن ۽ لوائي ۽ وارن سالن کان پوءِ زندهه رهيا ۽ 1933ع کان پوءِ ادب کي نئون موڙ ڏيڻ ۾ وڏو حصو ورتو، جن ۾ ٻيروس پئسترنڪ ۽ اٽنا اخماتووا جا نالا اهم آهن. هوءَ ليننگراڊ ۾ رهندي هئي. روسي زبان جي وڏي شاعرا طور سندس نالو اهم آهي.

اچو پائرو!

اچو پائرو! آزاديءَ جي جدوجهد جو گيت ڪو ڳايون
هي ڏنڌو ورهيه مهمان آهي...
رات جي ٽينڊڙ پائيءَ ۾
چار چو جهنگ وڃايل آهي
۽ توهان- آداس ورهين ۾ اُٿندا ڏسجوتائ...
اي سج! اي نياڪاري! اي لوڪو!
اچو هن ڏنڌ جا جس ڳايون
جنهن کي لوڪن جا اڳواڻ اکين تي ڪنيو بيٺا آهن
۽ طاقت جي ڪاري ڏنڌ جا جس ڳايون
جن کي ڪٽڻ ڏاڍو ڏکيو آهي.
اي وقت، تون به ٻڌ! تنهنجو ٻيڙو ٻڏڻ وارو آهي...
اسان سڀ آپمان پي ڇڏيا
۽ کين جنگي لشڪر تائين وٺي وياسين

•

هاڻي سج نٿو ڏسجي ڪٿي
۽ سڀڪجه هڪ چار ۾ لٽڪي پيو چڻ
هڪ گهاٽي ڏنڌ ۾ جهلجي پيو آهي جيئرو
سج ڪٿي ڏسجي نٿو- ۽ ڌرتي تمام ڏورو هي پيئي

اوسپ مئنديلستام (Osip Mendelstam): هي روسي شاعر وارسا ۾ 1891ع ۾ ڄائو هو. استالن جي باري ۾ طنزيه ۽ مزاحيه نظر لکڻ ڪري کيس ماسڪو ۾ ڪانسينٽريشن ڪئمپ ۾ رکيو ويو، جتي 1938ع ۾ مري ويو.

هائي...جتن ته ڪريو!
 ڳوٺا، ٻچڙا، رڙندڙ ونجهه ته هٿ ڪريو
 ڌرتي وهي پيئي..مردن، حوصلو رکو!
 سمنڊ کي ڪيڙيون جيئن هر ٿا ڪاهيون
 ۽ 'لينتي' جي سيءُ ۾ به ياد رکنداسين
 ته اسان ڌرتيءَ جي قسمت ڳڏي هئي -
 پورن ڏهن بهشتن عيوض.

★ لينتي: پاتال لڪ جي هڪ ندي آهي، جنهن جي پاڻيءَ ۾ گڏريل ڳالهيون وسري وينديون آهن.

موسي جليل

تاتاري (روس)

دوست جي نالي

دوست، افسوس نه ڪج ته اسان هيئن ويڙهي وياسين
ڌرتيءَ تي هر ڪنهن جي پاڳ ۾ موت لکيل آهي
هر ڪو پنهنجي ڄمار جي ورهين جي سرحد پاڻ طئي ڪري ٿو
پر ورهيه جيون جي گاڏيءَ ۾ ساڻي نٿا بڻجن
نه ئي ڪنهن جو جنم کان موت تائين جو وقت گاڏيءَ ۾
ساڻ جو عرصو آهي

سڄي مقصد کان وهائيل رت سرويچن کي امر ڪري ٿو
۽ سندن مقصد کي ديوي طاقت ٿي بخشي.

هڪ ٻيو نظم

منهنجي گيتن سيڪاري آهي
آزاديءَ سان محبت
۽ گيت ٿي سيڪاريا ويندا - بي ڊپو موت
منهنجي زندگي لوڪ جو هڪ گيت هئي
۽ منهنجو موت، لڙائيءَ جي للڪار هوندو.

موسي جليل (Moosa Jaleel): هي تاتاري شاعر 1906ع ۾ ڊرين برگ ڀرسان هڪ ڳوٺ مستافنو ۾ هڪ هاري جي گهر ۾ ڄائو. ساميه وادي سوچ رکندڙ شاعر هو. هو لڙائي ڇڏيندي فوج ۾ ڀرتي ٿي ويو ۽ محاذ تي هليو ويو، جتي دشمن جي گهيري ۾ اچي ويو ۽ تمام گهڻو زخمي ٿي پيو. مختلف جنگي قيدين جي ڪيمپن ۾ رهائڻ کان پوءِ وارسا جي جيل ۾ 1944ع ۾ کيس قتل ڪيو ويو. هن جيل ۾ رهڻ دوران 115 نظم لکيا، جن مان ڪجهه هتي ڏنل آهن.

دشمن ڏانهن!

قاتلو! مون کي گوڏن پر ڏسڻ ڏيو
 سر توڙ ڪوشش نه ڪريو!
 اچو! مون کي ڏيندو نه گهرجي
 تنهنجور سان رڳيل هٿوڙو
 منهنجي اک کي نه چنپائيندو
 مان ويهي نه، بيهي مرنديس



راتاهو

پوءِ
سج ٿڌو ٿي ويو
۽ دنيا مان
برڪت هلي ويئي
ميدانن مان گاهه سڪي ويو
سمندن ۾ مڇيون خشڪ ٿي ويون
۽ زمين پنهنجن لاشن کي
ٻاهر اڇلائي ڇڏيو

رات هنن دين درين ۾
لاڳيتي ڌنڌو وڌندي ويئي
پڪڙبي وئي
هڪ شڪي خيال جيان
ڊگهيون ۽ ڪشاديون سڙڪون
اوندهه ۾ پڙي ويون
گهر ٿي ويون

هڪلائي ۽ نويڪلائي جي غفائن ۾

فروغ فرخزاد: (Farugh Farrokhzad-1934-66). ايران جي مشهور شاعرا. هڪ فوجي ڪرنل جي ڌيءَ. 16 ورهين جي ڄمار ۾ شادي ڪيائين. 17 ورهين جي ڄمار ۾ سندس ڪلام جو پهريون مجموعو 'قيدني' شايع ٿيو. ان کان پوءِ 'ديوار' ۽ 'باغي' نالي مجموعا ڇپيا. 32 ورهين جي ڄمار ۾ ڪار جي حادثي ۾ وفات ڪيائين. مرڻ کان پوءِ سندس رهيل ڪلام جو مجموعو ڇپيو.

بيڪاريءَ جنم ورتو
 رت مان پئنگ ۽ آفيم جي
 بدبو پئي آئي
 ڳورهارين عورتن
 منڊيون لٿل ٻارڙن کي جنم ڏنو
 ۽ پينگهن شرم وڃان
 قبرن ۾ پناهه ورتي

۽ انهيءَ خاموش ۽ مرده ٽوليءَ ۾
 جڏهن ڪا چٽنگ
 معمولي ۽ بيڪار چٽنگ
 اوچتو ئي اوچتو
 پڇي پري، پرزا پرزا ٿي وئي ٿي
 تڏهن هنن هڪ ٻئي تي حملا ڪيا
 هنن چرين ۽ ڪاتين سان
 هڪ ٻئي جا ڪنڌ ڪپيا
 پوءِ هو وڃي
 اڻ سامايل چوڪرين سان
 رتھائي بستري ۾ سمھيا.



يُو چي - هوانَ

ڪوريائي (ڪوريا)

گل

پن چڻ آئي

۽ ٻارڙا ڪٿان گلن جو بچ ڪٿي گهر آيا

هڪ هڪ ڪري

انهن آهي ڳڻيا ٿي، قطار ۾ ٺاهي رکيا ٿي

رابيل، چمبيلي، گلاب

۽ سدا بهار

هومر ورڪ کان پوءِ

جڏهن هو سمهيا ٿي

هنڌ ۾ پڻ ٻجن بابت گفتگو ڪرڻ لڳا

”ڪاش! اسان وٽ آهي پوکڻ لاءِ باغ هجي!“

۽ پوءِ جڏهن رات لٿي

۽ جڏهن ماڻس مٿانن تڏو ڪيو

اهي ويچارا ڪومايل گل ٿڪجي سمهي پيا

چڻ گلن جي جڙتو ٻاريءَ کي

ڳرائڙي وڃي سمهي پيا هجن.



يُو چي - هوانَ (Yu ch'i-hwan) 1908ع ۾ ڪوريا ۾ جنم ورتو. سندس پهرين شعري مجموعو 1939 ۾ شايع ٿيو، جڏهن ته سندس نظم 1931ع کان وٺي رسالن ۾ ڇپجڻ شروع ٿيا هئا. هو نظم توڙو گيت پڻ لکڻ جي مجيد اديب هو، ڇپائي محاصري دوران، هن ڪيترائي سال منچوريا ۾ جلاوطنيءَ ۾ گذاريا. يُو پنهنجي لکڻ کي جاري رکيو ۽ ان ۾ غير انفرادي فطرت جي فلسفي کي پيش ڪندو رهيو، جنهن جو انسان حصو آهي. هو 1967ع جي شروعات ۾ پُسان جي هڪ ٽريفڪ حادثي ۾ گذاري ويو.

بي يڪ - سا

ڪوريائي (ڪوريا)

چوڻي

سخت سرديءَ جو ماريل
مان اڃا اُتر ڏانهن ڌڪبو ويس
ڪوهيڙو تلوار جي ڌار جهڙو جتي مان بيٺو آهيان
خبر نٿي پوي -
گوڏن کي ڪيئن کوڙيان، ڪٿي کوڙيان
۽ برفيلي پيرن کي ڪيئن رکان، ڪٿي رکان؛
رڳو اڪيون بند ڪريان
۽ خيال ڪريان ته سيارو
لوهه جو هڪ ست رنگو پينگهو آهي.

...

بي يڪ - سا: ڪوريا جي هن شاعر جو جنم 1905ع ۾ ٿيو. پيڪنگ يونيورسٽيءَ ۾ سوشيالاجي پڙهائيندو هو. آئيني پڪڙيو ويو ۽ 1944ع ۾ جاپاني فوجي پوليس کيس عذاب ڏيئي ماري ڇڏيو.

هڪُ

نديءَ ڪناري گوالي جي چڙي
 پاڻيءَ جي لهن ۾ لڏڻ لڳي آهي،
 مٽيهاڻي پاڻيءَ ۾ ويٺل مينهن کي
 هوا هٿ ڦيري رهي آهي
 ڪوئل جي گونجندڙ ڪوڪ سان
 وڻ جون تاريون لڏڻ لڳيون آهن،
 مال هڪلڻ لاءِ نڪرندڙ آواز
 اڪيلا، ويران ٿي رهجي وڃن ٿا،
 پير تي ويٺل چيرو
 هڪ اک کولي
 پرھ جو پرڪاش ڏسي چڪو آهي،
 ڪٽ چڙهيل چانديءَ جي سڪي وانگيان
 چنڊ آڪاس جي سمنڊ ۾
 ترڻ لڳو آهي،
 جهنگر جو آواز
 اندڪار ۾ ڦهلجي
 ڳوٺ جي اندر تائين اچڻ لڳو آهي.

سريش جوشي (Suresh Joshi) ي: جنم 1921ع. گجراتي شاعر، ڪهاڻيڪار، مقالہ نگار ۽ ناول نگار. ٽي شاعريءَ جا، پنج ڪهاڻين جا، ٻه ناول ۽ اٺ مختلف مجموعا شايع ٿيل. 1983ع 'چنتا يامي منسا' تي ساهتيہ اڪادمي جو انعام مليل. بڙودا يونيورسٽيءَ جي گجراتي شعبي ۾ اُستاد.

۽

ننڍ ۾

منهنجي ڳوٺن مان ڦٽن ٿيون ڏند ڪٽائون

ورائدي جي درين جي هڙدي مان

ايڪانت جو وسڪارو ٿئي ٿو

ديوار وارا ديويون - ديوتا

۽ مري ويل ماڻهن جي

زمين جي تري ۾ لهي

هڪ منڊلي ويهي ٿي،

انهيءَ مان لنگهي الائي ڪيتريون اڻ ڄاڻ اڪين جون

سڙڪون تيار ٿي وينديون آهن

۽ هتان کان ڀوڙي ٿو

ساهن جو گهوڙو هڪ سڙي.

چؤطرف ڏسجي ٿو

سپيڪجه سويمبر جي ڪنيا جهڙو سندر

انڌڪار کي ڇڻ

ڪنهن من موهڻيءَ جي

مناس سان مڙهي ڇڏي ويو آهي

ٿوري ڪلٽي رهجي ويل در مان

لنگهي وڃن ٿيون اٺيڪ صديون.

ڇڻ سچ ۽ ڪوڙ ۾ هٿ وجهي

هليا اچن ٿا

۽ اُتي منهنجن نالو ڪٿي

هڪدم سڏيو وڃي ٿو

سمورا مون کي ڪوچين ٿا

مان به ڪوچيان ٿو

پر اهو ڪوچ جو سلسلو بيهي چوڻو!

ٿي

رات ڌرتي ڪنهن ڊوڙندڙ پکي وانگي سهڪي ٿي
صديون اڳ ٿيل پرلڻ ۾ غائب ٿي ويو سج،
رات موتي جي مالا مان هوريان هوريان ٻاهر اچي ٿو

جبل جو مک انڌڪار کي چٻاڙي ٿو
جنهن جو آواز هتي ٻڌڻ ۾ اچي ٿو
پريان ڪٿي وهندڙ ندي
ايشور جي وات ۾ پيل وقت کي
اڳيان - اڳيان ٻڌي رکيو آهي

لڙڪ ۾ پينل رومال سمنڊ وانگي
هوا جي هٿ ۾ ڦڙڪي ٿو
چار ۾ ڦاٿل پکي وانگي
آڪاس ساري رات ۾ ڦڙڪائي ٿو.
ڪي ڳاڙهه تاريخ جي ديوار جو هيٺل
ٻڌڻ ڪندو رهي ٿو
ڇوڪريءَ جي اندر سٺل باهه
پاسو ورائي ٿي
پرواري ڪڏ ۾ ٻن ڏيڏرن ۾
انهيءَ ڳالهه تي جنگ جاري آهي
ته پهرين ٻاهر ڪير نڪرندو.

چار

منهنجي گهر ۾
منهنجي ڏاڏي، سج جي روشنيءَ جا
دالا چنڊي ٿي

منهنجو ننڍو پٽ
آڪاس جي خالي پٽي کي ڪٽي
ڪيڏي رهيو آهي.

ڏاڏو هيٺين منزل جي
وراندي ۾ رويي
ڏک جا پاسا ورائي اچي ٿو.

پنئين در کان ايندڙ هوا
پنهنجي آواز سان
گهر جي نئين ڪنوار جي ڪنن کي
چرڪائي رهي آهي.

پنهنجي ٿٽل لفظن کي
جوڙيندي جوڙيندي
مان انهن سڀني جي ڪوششن کي
ڏسي رهيو آهيان.

هڪ شاعر جو وصيت نامو

شايد مان سڀاڻي نه رهان -
سڀاڻي جيڪڏهن سج اُپري، ته چئجانس ته
منهنجين ٻوٽيل اکين ۾
هڪ لڙڪ سڪائڻ باقي آهي.
سڀاڻي جيڪڏهن هوا لڳي، ته چئجانس ته
نوجوان وهيءَ ۾ هڪ چوڪريءَ جا
چورايل پڪل ميوا
اڃا منهنجي ڌار تان ڪيرائڻ باقي آهن.

سپاڻي جيڪڏهن سمنڊ چُلڪي، ته چئجائنس ته
 منهنجي من اندر ۾ جبل بنجي چڪا آهن،
 ڪنور ايشور کي، چڪتاچور ڪرڻ باقي آهي.
 سپاڻي جيڪڏهن چنڊ اُڀري، ته چئجائنس ته
 هن جي ڪُنڊيءَ ۾ ڦاسي،
 ٻاهر پڇوڻ لاءِ
 هڪ مڇي اڃا به،
 منهنجي اندر ۾ تڙپي رهي آهي.
 سپاڻي جيڪڏهن باهه ڏسجي، ته چئجائنس ته
 منهنجي جدا ٿيل پاڇي جي چڪيا
 اڃا به جلاوڻ باقي آهي
 شايد مان سپاڻي نه رهان.



جينت پانڪ

گجراتي (ڀارت)

لاش

منهنجو لاش جڏهن
پاڻيءَ تي تريو ۽
ڪناري تي آيو
مون محسوس ڪيو ته
اها ڳوڙاڻ منهنجي جسم جي نه هئي
پر ساھ جي هئي

ڌيءَ جي وهانءَ کان پوءِ گھر ۾

نيڪ سڀ ڳڻتيون ۽ ڳارا ختم ٿيا:

وهانءَ پورو ٿي ويو
ڪُنوار جي ماءُ، هاڻي
سڀ سامان ۽ شيون سنڀالي ڳڻڻ لڳي ٿي
هر شيءِ ياد ڪري -
سنواري رکڻ لڳي:
پليٽون، پيالا، گلاس، ٿالهيون -
هر ڪا شيءِ برابر.
ڪٿي به ڪا شيءِ گم نه ٿي -

جينت پانڪ (Jayant Pathak): گجراتي شاعر ۽ نثر نگار، ڏيهي زندگيءَ جو احساس چڻيل. هن تنقيد ۽ آتر ڪهاڻيءَ جا ٽڪرا به لکيا آهن.

پر پوءِ

اوجھو ڪجھه ياد ڪري

بيھي رھي ٿي

ڪمري جي وچ ۾ چوڌاري ٺھاريائين

لوٽائيل سوال اڪين مان وھي آيس:

”پر، منھنجي ڌيءَ ڪٿي؟“

جهينا پائي ديسائي

گجراتي (ڀارت)

زمين تي چٽ

تاپتي بي پرواهيءَ سان ڊوڙندي پئي وڃي
ٻنهي پاسن کان
سندس اڇلون ڏيندڙ سڱ
زمين ۾
اونهائوناهندا ٿا وڃن

ويرجي لهڻ کان پوءِ
ڪيڪڙي
زمين تي چٽ چٽي ڇڏيا آهن.



جهينا پائي ديسائي (Jheena Bhai Desai): 'سيمر شمي' نالي سان شاعري ڪندو آهي. گيتن ۽ هائڪو جو شاعر. 'ان ترپت' ناول ۽ ڪهاڻيون لکيائين. هائڪو جو مجموعو 'سونيري چاند روپيري سورج' تي ڪيس هائڪو جو وڏي پايي جو شاعر مڃيل. -

جيون ڏاڻو ماڻهو

اڄ موت مون اڳيان ائين آهي سَمَهاڙو
جيئن پراڻي روڳ جو ڪو روڳي ٿئي نونو
۽ جيئن ڪو بند پيچي ٻاهر نڪري...

اڄ موت مون اڳيان ائين آهي سَمَهاڙو...
جيئن ڪنول جي گلن مان پڪڙجي ڪا سڳند
۽ جيئن ڪو ويٺو هجي مد مست ڌرتيءَ ڪناري...

اڄ موت مون اڳيان ائين آهي سَمَهاڙو...
جيئن ڪو پنهنجي گهر لاءِ هجي اُتالو
۽ جيئن ورهين جا ورهيه بند ۾ گهاري...



نامعلوم (Anonymous): قديم مصري شاعر جون سندس خود ڪشيءَ کان اڳ جون لکيل اهي ستون، جن
اها هن جي پنهنجي پاڻ سان گفتگو هجي.

هڪ عرب چوڪري جو سوال

اي دوست!
تون جڏهن ۽ جيئن چاهين
چمڪندڙ سج جي هيٺان ڪيڏي سگهين ٿو
تون چاهين ته
پنهنجي لاءِ رانديڪا به وٺي سگهين ٿو
پر
مان انهن مان ڪجهه به نٿو ڪري سگهان
مون وٽ اهو ڪجهه ناهي
جيڪو تو وٽ آهي
تو وٽ پنهنجو گهر آهي
منهنجو ڪو گهر ناهي
مان هڪ بي گهر آهيان
عیدون ۽ خوشيون سڀ تنهنجي لاءِ آهن
مون لاءِ انهن مان ڪجهه به ناهي
۽ انهيءَ جو ڪارڻ نيٺ ڪهڙو آهي
جو اسان گڏجي ڪيڏي به نٿا سگهون؟



محمود درويش (Mahmud Darwish): جنم 1942ع فلسطيني ڳوٺ ال بروه ۾ ٿيس. سندس شعري مجموعا ٻين ٻولين ۾ ترجما ٿيا آهن، جن مان 'اوراق ال زيتون' (Leaves of the Olive Tree)، 'عاشق من فلسطين' (A Love from Palestine) ۽ 'آخر ال ليل' (End of the Night) اهم آهن. کيس 1970ع ۾ افروايشن ڪانفرنس ۾ 'لوتس ايوارڊ' ۽ 1983ع ۾ 'لينن پيس ايوارڊ' ڏنا ويا.

بلند الحيدري

عربي (عراق)

ويراني

ساڳي گهٽي،
پاڻ ۾ ڳٽيل ساڳيا گهر،
ساڳي ماڻ.
چوندا هئاسين:
”سيان اسان مري وينداسين،
۽ پوءِ جاڳنداسين.“
هر گهر مان
ننڍڙن ٻارڙن جا آواز
ڏينهن جي پاڪ سان گڏ
سڙڪ تي تڙڳندا؛
چٿرون ڪندا،
اسان جي ڪالهه تي،
اسان جي اُٻاڻڪين عورتن تي،

بلند الحيدري (Buland al-Haidari): ڪرد نسل جو هيءُ عراقي شاعر 1902ع ۾ اسڪندريه ۾ ڄائو ۽ عرب دنيا ۾ ناٽڪ ڪار طور مشهور ٿيڻ کان اڳ، قاهره ۽ پيرس ۾ قانون ۾ تعليم حاصل ڪيائين. "The Maze of Justice" ناول ۽ "The Fate of Cockroach" سندس عربي تخليقن جا ترجما آهن. هُو عربي زبان ۾ شاعري ڪري ٿو. سندس شاعريءَ تي ٻين عراقي شاعرن کان وڌيڪ جديد مغربي شاعريءَ جو اثر آهي. انهيءَ ۾ ڪو وڏاڙو ناهي ته هو نئين نسل جو نمائنده، مقبول ۽ پسنديدو شاعر آهي. هن جديد استعارو استعمال ڪيا آهن ۽ سندس شعر عام عربي شاعريءَ کان مختلف آهن. هتي پيش ڪيل سندس ٻه نظم سندس شاعريءَ جي انگريزي ترجمي تان ورتل آهن، جيڪي ڊيسمونڊ سٽيوارٽ (Desmond Stewart) تڏهن ترجمو ڪيا هئا، جڏهن شاعر جي ڄمار ويهن ورهين جي اندر هئي.

اسان جي چمڪندڙ پٿرايل اکين تي؛
 اُهي يادن کان سڪڻا هوندا؛
 کين پراڻي سٽڪ جي خبر به نه هوندي؛
 تھڪ ڏيندا اُهي
 چو جو کين پڇڻو نه پوندو ته چوڻا ڪلن اُهي.“

اسان چوندا هئاسين:
 ”وقت پنهنجي موسمن سان
 اسان کي ضرور ملائيندو
 ويڇا مٽي پاڻ ۾ پرڄاڻيندو.“

ڪالھ گھرو سوز هو چائيل،
 ۽ شايد -
 اسان ائين نه چاهيو هو،
 جيئن اسان چيو هو،
 جو اڄ موسمن ملايو ته اُهي اسان کي،
 پر ويڇا نه سگھيا آهن مٽجي.
 سوز جي گستاخي ٿيندي ٿي وڃي سرس
 ۽ سٽڪ تي،
 ساڳي سٽڪ تي،
 پاڻ ۾ ڳٽيل ساڳيا گھر،
 ساڳي ماڻ،
 ۽ اُتي -
 بند ڳڙ کين پٺيان
 وڌيون خالي سڪڻيون اڪيون،
 ٻارڙن جي اوسيٽڙي ۾
 ڊپ وڃان،

متان ڏينهن لهي نه وڃي -
 سڙڪ سان گڏ،
 هڪ هنڌ ڄمي ويون آهن.

ايمان

تون
 نٿي ڄاڻين
 ڇا تُو چاهيان مان
 جي تُو ڄاڻي ورتو
 ڪلندينءَ خوب احتجاج مان
 ڪيئي پيريل آواز ۾ چوندينءَ:
 ڏسو ته هي ڇا تُو چاهي؟
 ڏسو ته هي ڇا تُو چاهي؟

مون اُهي سمورا سال
 مڃي ڇڏيا آهن
 چهره هائي اُهي منهنجو سخت
 لڙڪ به نه اٿم اڪين ۾
 ڏينهن پيو گهاريان وٿڙ
 ڄڻ آهيان پُسيل قبر ۾
 دل منهنجي اُهي سرد
 پناهگيرن جي ڪيمپ مثل
 يا ڏوهارين واري پُڇا وانگر
 ڏسو ته هي ڇا تُو چاهي؟

مان رُٿان ٿو -
 ايمان وڃان ڏڪندڙ سندس عڪس آڏو

پنهنجي ڪڏهن رُندڙ اُڌاس چھري آڏو
۽ ورهين جي انهيءَ بوج آڏو
ڏسو ته هيءَ ڇاڻي چاهي؟
ڏسو ته هيءَ ڇاڻي چاهي؟

مان تھڪ ڏيڻ لڳان تو
بلڪل ٻين وانگر
اي حسينا!
تون سمجھي نٿي سگھين
ڇاڻو چاهيان مان -
ڇوڻي پڇين
ڇاڻو چاهيان مان
مون کي ڪجهه نه گھرجي
مان ٻين کان اوڀرو آهيان.



وندا ڪراند بڪر

مراڻي (ڀارت)

اونداھين جي پاڙي ۾

هن موسم ۾ هتي رڳو خدائن جي رهائش آهي
جيڪي سُرخ هوائن ۽ گجگوڙ ڪندڙ اُس جي زبان سمجھندا آهن
گنڀير لئه ۾ وڌندڙ اُس
ويا وانگر اسان جي گهرن
۽ بُت ميدانن ۾ ڦهلجي ويئي آهي
هن طرف سوساٽ ڪندڙ اونداھي آهي
نيٺ نهار تائين
ڇيڙن تي لڙندڙ ننڍڙن قطرن کان سواءِ ڪجهه به ناهي
پري

اونداھين جي پاڙي ۾
پائيل ۽ نيم وحشي ڪبوتر
خط پهچائڻ جو فن سکي رهيا آهن
اوندھ ۽ حرارت سان هريل جنات ۾ ورتل ماڻهو
برق خور کانوَن جي آواز جي اوسيٽري ۾ آهن!

مون ڪجهه ڏٺو آهي

مون ڏٺو ڪا شيءِ پور پور ٿي ويئي آهي
محسوس ڪير

وندا ڪراند بڪر (Vinda Karandikar): جنم 1918ع. ايم. اي بمبئي يونيورسٽي مان 1946ع ۾.
SIES ڪاليج بمبئي ۾ انگريزي شعبي جو صدر ٿي رهيل. مراڻيءَ جو شاعر، مضمون نگار، نقاد ۽ مترجم.

مون وٽ اهي لفظ ناهن
 جيڪي هن ڦهليل بيوسيءَ کي زبان ڏيئي سگهن
 جيڪا ڪروڙين دماغن ۾ ڦاٿڻ جي اوسيٽري ۾ آهي
 اُهي اڪيون ناهن
 جيڪي ڪروڙين اکين ۾ ضدي ڪرب جي
 بي چئن چمڪ کي جهلي سگهن
 اُهي ٻانهون ناهن
 جيڪي دنيا جي انهيءَ يتيم محافظ کي ڳرائڙي پائي سگهن
 جيڪو پيدائشي پناهه گير آهي
 بدنصيب آهي، وڃايل آهي
 ۽ ڪنهن ڪنڊ ۾ منهن پيلو ڪري ويٺو آهي
 منهنجي لاءِ ڪا صليب ناهي، ڪا صليب ناهي

مون ڏٺو ڪا شيءَ پور پور ٿي ويئي آهي
 مون
 ٽپهريءَ جو هڪ پوائتو سڀنو ڏٺو
 بازار جا انڌا هجور
 ٽين جي دهن جون ڪوليون
 ڪيئن سان پريل گهٽيون
 هڏن جا پيچرا
 اڪين جا ڪويا
 سڙندڙ ماڻهو جن ۾ مرڻ جي به طاقت ناهي
 دونهون ڏيندڙ ماڻهو جن ۾ پڙڪي پوڻ جو چاڙهو ناهي
 واويلا ڪندڙ ماڻهو جن ۾ حملي ڪرڻ جي قوت ناهي

مون ڏٺو ڪا شيءَ پور پور ٿي ويئي آهي
 ۽ هن مون کي پنهنجي هڪ ئي ڌڪ سان
 اندو ڪري ڇڏيو آهي

مون کي آڏپيس وانگر
 بيابان ۾ ڏکيو ويو آهي ته حرامين جي پٺيان هلندو جان
 مون محسوس ڪيو ته خود منهنجي ذهن ۾
 حسب نسب جو زهريلو وڻ...
 انهيءَ جي پاڇي جون ڦهلجندڙ تاريون آهن
 ۽ ڊگهين تارين جو بوجھ
 ۽ اهي ميوا جيڪي پڇي نٿا سگهن
 گل جيڪي سڙي ڪو ماڻجي ويا
 ۽ انهن جي پويان هڪ سرد مقبرو

مون ڏٺو
 ڪاشيءَ پور پور ٿي ويئي آهي.

تون ۽ مان ڊوڙون ٿا

تون ۽ مان ڊوڙون ٿا
 هڪ ڏند کان ٻئي ڏند تائين

منهنجي ڇاتي
 اهرام جي سر سان
 چٽي ويئي آهي
 پنهنجي زرد مڪوٽي جي پٺيان
 ممي مون تي کلي
 توڇيو:
 ”ڇا فرعون سڀاڻي پنهنجي پيٽ سان شادي ڪندو؟“
 مون چيو:
 ”ڇا اُهي بچيل سچيل گرھ سڀاڻي تائين باقي بچي سگهندا؟“
 هن چيو:

”ابوالهول جو سنگين پير اسان جي سرن تي آهي.“

منهنجي پويان ڪُل جسم
تنهنجي پويان گونگا لاش
تون ۽ مان ٻوڙون ٿا
هڪ ڏند کان ٻئي ڏند تائين

چين جي عظيم ديوار تي
هر چوٽيءَ ۾ جنات آهي
هر پٿر کي بي انصاف اذيت جي ڪوڙهه آهي
تو چيو:

”ڇا ڪنفيوشس جي چوغي تان زري اُڏڙهي ويندي؟“
مون چيو:

”ڇا ڪو بُد منهنجي پٺيءَ جي هن ٿوهي کي ٺڳي سگهي ٿو.“
هن چيو:

”تهذيب جي چين جو رس ڪنهن کي پيش ڪن ٿا ملندو؟“
تاريخ پاڻ کي ورجائيندي آهي
تاريخ زخمي ٿي ڪري پوندي آهي
تون ۽ مان ٻوڙون ٿا
هڪ ڏند کان ٻئي ڏند تائين

جمنا جي ڪارائيل پاڻيءَ ۾
ڪاليءَ جي ٻوٽي آهي
ڪناري تي هڪ تاج پيلو پوندو پيو وڃي
تو چيو:

”محبت جي هن عظيم يادگار تي گلاب جو هڪ گل ٿڌو آهي.“
مون چيو:

”تاج هوريان هوريان دريا تي جهڪي رهيو آهي.“

هن چيو:

”اوندا هيءَ جو ڪارو هاڻي زمين اڳيان لڏي رهيو آهي.“

تنهنجي پيرن هيٺان ڇا آهي
مقتل ۾ قتل ٿيندڙ شخص جو لاش
تون ۽ مان ڊوڙون ٿا
هڪ ڏند کان ٻئي ڏند تائين

هڪ ڏند کان ٻئي ڏند تائين
تون ۽ مان سفر ڪريون ٿا
ڪارا ڏند، اڇا ڏند
ڳريل ڏند، ڪريل ڏند
ڏاهپ جي ڏاٽ، موركائيءَ جي ڏاٽ
ڪي پراڻا، ڪي نوان
پيلا ڏند

ڪي ڳالهائيندڙ ڪي گونگا
ڪن ڏندن تي ڪوپا
سون ۽ چانديءَ جا
تون ۽ مان ٽپو ڏيون ٿا
هڪ ڏند کان ٻئي ڏند تائين
پر هاڻي ڪير روئڻ وارو آهي
مان رڳو هڪ سچائيءَ کان واقف آهيان:
ته سون جي هڪ رٿ ۾ ويهي
سچائي هتان کان هلي ويئي آهي
هر چاڻيءَ تي هڪ اڻ ٿر تقدير جي مهر آهي
هر طرف ڪنل جسم
تاريخ زخمي ٿي ڪري پئي آهي
انهيءَ ۾ ڪهڙو نشون انڪشاف آهي؟

تون ۽ مان ڀوڙون ٿا
هڪ ڏند کان ٻئي ڏند تائين

غدار

بمبئيءَ جي هڪ گهٽيءَ ۾ ڪٿي ڪو چريو رهندو آهي
جيڪو اڃا تائين قسم کائي چوندو آهي ته
هماليه جيڏي ارجي ڍڳ تي
پلي هندي سمنڊ جيترو رت هاريو
(پلي ڪجهه به ڪريو)
مٺ جيترو سائو گاهه به نه ڦٽندو

جڏهن گهٽيءَ ۾ ڪتا پڙنڪندا آهن
ته هو ڪنهن بي نام خوف کان ڪنڀڻ لڳندو آهي
۽ پيشاب ڪري وجهندو آهي
(منهنجو خيال آهي)
چرئي جي بدران کيس بزدل چوڻ گهرجي

هو صبح جي اخبارن جي پيش ڪيل
وهندڙ باهه جو ڊيلي راشن نڙيءَ ۾ لنگهائيندو آهي
پوءِ انهيءَ گناهه جو ڪفارو هيئن ادا ڪندو آهي
جو ٻارن سان لائون راند ڪيڏڻ لڳندو آهي
گيتا پڙهندو آهي ۽ پاڻ کي تنبيهه ڪندو آهي
”خبردار، هٿيار کي هٿ نه لائج“
جڏهن هو پنهنجي چٽي کوليندو آهي ته کيس
ايتمي مشروم ياد ايندي آهي
۽ هو پنهنجو توازن قائم رکڻ خاطر

ڪنهن جي به ڪلهي تي هٿ رکي ڇڏيندو آهي
 جڏهن حاڪي وردين ۾ جنگي نغما ٻڌندو آهي ته
 ڪنهن ڪڏڙي وانگر عورتاڻي ڍنگ سان روئڻ لڳندو آهي
 (منهنجو خيال آهي)
 ڪڏڙي بدران کيس غدار چوڻ گهرجي.

هو جيتوڻيڪ سجاڳ هوندو آهي پر نمي سس چٻاڙيندي
 گاريون بڪڻ لڳندو آهي ۽ چوندو آهي
 ”ڪاش مان جيئرو رهان
 ۽ پڪاسو جي پڪيءَ کي آسمان ۾ اڏا منڊوڏ سان!“



انٻ

فرج مان ڪڍي
تيل تي چاقوءَ جي بلڪل ڀرسان
جتي ڪجهه گلاس رکيل هئا تنهن کان ٻڃيل
انٻ، انٻ جي ئي شڪل جو هو
لنگڙو بي حد سائو ڀر مٺو مشهور
چين تي آيل مٺاڻ جهڙو

انٻ ڪپيو ويو ڏاڍي خبرداريءَ سان
رڪي پليٽ ۾ ورهايو ويو دوستن ۾
انٻ، انٻ هو
۽ ان کان وڌيڪ ڪو استعمال به نه هو
ڊوڙندڙ هن دنيا ۾ انهيءَ انٻ جو

منجهند جو فرج مان ڪڍي
تيل تي چاقوءَ جي بلڪل ڀرسان
رڪيل انٻ ڪيڏو تائون نظر اچي رهيو هو
هاڻي خالي ٿي ويئي آهي سندس جاءِ
جتي ٿوري دير اڳ اهو سجايل هو ڪيڏي شان سان

رات سمهڻ کان اڳ ڪافي دير تائين
 ياد ايندي رهي انهيءَ انب جي
 جيڪو ڪل ۽ ڪڪڙي ڪڍي کاڌو ويو
 دراصل انب جي باري ۾ سوچيندي
 عام ماڻهو اڪثر ايترو ئي نرم ٿيندو آهي
 انهيءَ کان وڌيڪ هو ڪجهه وڌيڪ سوچي نٿو سگهي

وساري چڪو هوندو آهي انهن گوشن کي
 جتي لڪي لڪي انب کائڻ جو مزو
 چوڪيدار جي گارين کان وڌيڪ وڏي ويندو هو
 پوءِ به جيڪي چوڻو هو ان وقت
 لڪي چوري ڪري نه کائو، گهري وٺو جيترا دل گهري
 عام ماڻهو عام ماڻهو ئي هو ان وقت
 جيڪو هاڻي خاص ماڻهو ۾ تبديل ٿي
 ڪيترو بي قدر ٿي چڪو آهي
 لڪي چوري ڪري کائيندي کائيندي

کائڻ لاءِ اڪثر هينئر به کاڌا وڃن ٿا انب
 بنارسي، لنگڙو، سفيدو، قلعي، چوسو
 پر فرج مان ڪڍي
 ٽيبل تي چاقو ۽ جي بلڪل پيرسان
 جتي ڪجهه گلاس رکيل هئا ٽٽڻ کان بچيل
 چاقو ڪڍندي ئي لڳي ٿو چڻ
 عام ماڻهو خود ئي انب جي شڪل ۾ ڪپي
 رکيو ويو هجي ٽيبل تي
 ۽ تڏهن انب کائڻ ۾ اوترو مزو نٿو اچي
 جيترو ان وقت انب کائيندي
 عام ماڻهو ۽ کي اچڻ کپندو هو.



رڳو گلن کي خبر آهي

گلن جو رنگ ساڳيو ئي هو:
ساڳي طرح نيري تي واڱڻائي تي پيلي تي ڳاڙهو۔
پر گل ئي ساڳيا نه هئا.
جڏهن ڪو ڏسندو نه هوندو آهي
تڏهن ڪو بدلائي ڇڏيندو آهي گلن کي.
نيڪ ساڳيا جا ساڳيا نه
پر ٿيڙائي ڇڏيندو آهي لڳ ڀڳ ساڳيا ئي گل
جيڪو ڏسي ته چئي نه سگهندو
ته اهي ساڳيا گل ناهن.
رڳو گلن کي خبر آهي ته اهي ناهن
۽ اهي آهن.

ڌرتي لکي ٿي ڌرتيءَ کي

ڌرتي لکي ٿي ڌرتيءَ کي
نه ڪو تاوانگي
نه ڪهاڻي وانگي،
هڪ اوجھ لفظ وانگي
ڌرتي لکي ٿي ڌرتيءَ کي

اشوک باجپئي (Ashok Pajpeyi): جنم 16 جنوري 1941 ع. شاعر ۽ نقاد. 'شھراب پي سنڀاونا هي'،
'ايڪ پنٽنگ انٽ بر' (شعري مجموعا) ۽ 'في الحال' (تنقيدي مضمون) شايع ٿيل آهن. ٻيا ڪيترائي ڪتاب
ترتيب ڏنل آهن.

ڌرتي ڇهڪي ٿي ڌرتيءَ تي
 نه جهرڪين وانگي
 نه پوپتن وانگي
 هڪ آڪٽ خوشيءَ وانگي

انهيءَ تي به جيڪو
 ڍوئي رهيو آهي پئيءَ تي بوجه

۽
 اناج جي گهٽ اگهه ملڻ تي ڏکي آهي
 انهيءَ لاءِ به
 هلڪي آهي ڌرتي
 گل وانگي
 پاڻيءَ جي بوند وانگي
 ڪپهه جي پهي وانگي

پريم جي لاءِ جڳهه

(1)

هن پنهنجي پريم لاءِ جڳهه ناهي

بھاري الڳ ڪري ڇڏيائين تارن کي
 سج چنڊ کي رکي ڇڏيائين هڪ طرف
 جهنگ جي ولين کي لوڏيائين
 هن ڌرتيءَ کي چنڊيو ڦوڪيو
 ۽ آڪاس جا ته نيڪ ڪيا

هن پنهنجي پريم لاءِ جڳهه ناهي

(2)

هڪ سنسان پيھري
هڪ شام جي ايڪانت
پريل بس جي سيت
پنهنجي پريم لاءِ جڳھ ٺاھي

هن ديوتائن کي
ٻاھر ڪڍي ڇڏيو
۽ پکين کي چيائين ته
ٿورو آڪاس ڇڏي ڏيو۔
هن هڪ ٻارجي هٿ مان هڪ گل کسيو
۽ هڪ پنکڙيءَ مان ٿوري ساوڪ اُڌاري ورتي
هن پوپٽ، نوريتري ۽ اُس جي وچ ۾
پريم لاءِ جڳھ ٺاھي

پر هڪ دري ته کليل رهڻ گهرجي!

موسم بدلجي، نه بدلجي
اسان کي اُميد جي
گهٽ ۾ گهٽ
هڪ دري ته کليل رکڻ گهرجي.

شايد ڪا گرھڻي
وستي ريشم ۾ ويڙهيل
انهيءَ وڻ جي هيٺان
ڪنهن لکيل ديوتا جي لاءِ
ڇڏي ويٺي هجي

گل، چانور ۽ ڪجهه منائي

ٿي سگهي ٿو ته
ڪنهن ٻارجو ڪينهوڙو
بجاءِ آخر ۾ وڃائجي وڃڻ جي
اسان جي ڪمري ۾ اندر اچي ڪري ۽
اهو موتائي سگهجي.

ديو - اسر سنگرام ۾ رتوروت
ڪو پوڙهو لفظ
ٻاهر جي ٿڌ کان ڏڪندو
ڪنهن ڪوٽا جي هلڪي تاو ۾
ڪجهه دير آرام ڪرڻ لاءِ ترسڻ چاهي.

اسان پنهنجي وقت جي هارايل بازي لڳايون
۽ ڊاءِ تي لڳائي ڇڏيون
پنهنجي همت، چاهت، سپڪجه -
پر هڪ دري ته کليل رکڻ گهرجي
جيئن هارائڻ ۽ ڪرڻ کان اڳ
اسان اوندھ ۾
پنهنجي آخري هٿيار وانگر
پنهنجو پوءِ
اُچلائي سگهون چمڪندڙ
باقي رهيل دعائون



پگوتِ راوت

هندي (پارت)

پڪجڻ جو سڪ

جڏهن ڪو بُت ۾ پريل ڦڦڙي ڇوڪرو
اوهان جي پنهنجي جوان ٿيندڙ پُٽ جي
قد کان مٿيرون ڪرڻ لڳي
۽ اوهان جو ڪنڌ
پنهنجو پاڻ
مٿي ڪڍي وڃي

جڏهن بي اختيار ڌيان ڇڪيندڙ
ڪنهن ڇوڪريءَ جون اکيون
اوهان جي پنهنجي وڌندڙ ڌيءَ جي
بي چئن اکين کان
ڪجهه وڌيڪ ڇوڻ لڳن
۽ اوهان اوچتو
اڳي کان
وڌيڪ وڏا ٿي وڃو

جڏهن ڪو
بلڪل نئون جوڙو
ريلوي پليٽ فارم جهڙي پيمه ۾ به

پگوتِ راوت (Bhagwat Rawat): جنم 13 سيپٽمبر 1939ع، ڳوٺ تيهڙڪا (بنديلڪنڊ) مڌير پرديش.
هندي شاعريءَ جو هڪ مشهور نالو. ’سُندر ڪي باري ۾ دي هوئي دنيا‘، ’هُونا ڪڇ اس طرح‘، ’سُنو هرامن‘
(شعري مجموعا ۽ ’ڪوٽا ڪا دوسرا پاڪ‘ (تنقيد)، شايع ٿيل.

دنيا کان بي خبر
هٿ ڀر هٿ ڏيئي
مڱن پنهنجو پاڻ ۾
اوهان جي اڳيان لنگهي
۽ اوهان جو من
هڪدم جاڳي پوي

يا چئو ڊپ سان ڀرجي وڃي
۽ هڪ کن
يعني سچ پچ هڪ کن کان پوءِ
اوهان کي ياد اچي
ته اوهان گاڏيءَ جي انتظار ۾
پليٽفارم تي بيٺا آهيو

ته ائين سمجهو
ته هاڻي اوهان سچ پچ
اندر ۾
ميوي وانگر پڪڙڻ لڳا آهيو
سُڪ جي سواد وانگر
ڪارائتا ٿيڻ لڳا آهيو.

ڪجهه ٿلهن لفظن ۾ چئجي ته
شايد هاڻي اوهان
ڪنهن نڪر جي ٿانءِ وانگر
پڇي پڪا ٿي رهيا آهيو

۽ نه به چئو اهي ڳالهيون
ته پڻ

سمجھندا هوندا اوهان
تہ اهڙيءَ طرح
اندر ئي اندر ۾ اوهان
ڇا مان ڇا ٿي رهيا آهيو

دوستو
عزیزو
منهنجي ڳالهه کي رڳو جذبات چئي
ڪن تان متان اڏاريو
جتي به ملي سگهجو سواد
ڪنهن به ريت اهو بچائي
گهر آڻجو

ٻڌو!

ٻڌو
اوهان ٻڌائي سگهو ٿا
هو ڪٿي رهي ٿو؟

نالو
نالو هن جو ڪو خاص ناهي!
مهاڻو لڳ ڀڳ اسان جهڙو آهي

رنگ-روپ
قد-ڪاٺ
سڀ معمولي
اسان جهڙو

ها

شادي ٿي چڪي هئي هن جي
جڏهن هو نڪتو هو
هاڻي ته
ٻار به هوندس
پنهنجي عمر جو ٿي سمجهو
ٻار ڇا
هاڻي ته وار به اڃا ٿيندا هوندس
سندس

ٿي سگهي ٿو ٻارن جون
شاديون به ڪرائي ڇڏيون هجنس
۽ پوڙهو ٿي رهيو هجي

مان
مان سندس ننڍپڻ جو يار
اسان هڪ ٻئي کان سواءِ
هڪ ٻي به نه رهندا هئاسين جدا

اسان جو هڪ ٿي پاڙو هو
هڪ ٿي ڪوه
هڪ ٿي نمر جو وڻ
۽ هڪ ٿي اسڪول هو

مان ٿي ڪٿي رهيس اُتي
هو هن طرف نڪتو هو
مان هوڏانهن
هن طرف نڪري آيو هئس

منهنجو منجهس ڪو ڪم ڪونهي

هن طرف نڪتس

ته سوچيم

خبر وٺندو ڇان هن جي

تي سگهي ٿو

هو هجي

ته سوچيم.....!

...

آخري ڪٿا

گونجي پيو هڪ ماڻ ۾ في الحال
گڏريل شڪار جو تشدد
هوا ۾ واسيل آهي اها بو
سرد راتين ۾ لڙڪيو رهي ٿو چنڊ
بي رونق قنديل وانگيان

سنڌ گرپ اسٽان آهي شهر

وسندين ۾ گهمندو رهي ٿو
اکين جي ڪنڊن تي
ڳلن تي
جهڪيل پيشانين تي
گھنج ڦهلائيندو
عمر جو پوڙهو ڪاريگر

لاهيءَ تي تيزيءَ سان ڊوڙي ٿو سڄ

پنڪج سنگھ (Pankaj Singh): جنم 14 جولاءِ 1950ع، مظفرپور (بهار) ۾. تاريخ ۾ ايم. اي. مظفرپور ۾ هڪ رسالي جو ايڊيٽر. جواهر لال نهرو يونيورسٽيءَ جي ساهتيءَ سڀا جو سيڪريٽري ٿي رهيو. سياسي سرگرمين سبب ڪيترائي ڀيرا گرفتار ٿيو. آمريڪي جي ڏينهن ۾ رزويوش رهيو ۽ ان جي ختم ٿيڻ کان پوءِ، ڇھ مهينا راجسٿان يونيورسٽيءَ سان لاڳاپيل رهيو. ٻه ڀيرا پيرس جو دورو ڪيائين ۽ اُتي سوربون يونيورسٽيءَ جي مشرقي زبائن ۽ تهذيبن جي اداري سان تعلق رهيس. شعري مجموعو ”آهٽين آسپاس“ شايع ٿيل.

شام جي شروع ٿيندي ئي الوپ ٿيڻ لڳن ٿيون
 ڌنڌليون شيون، اداس چهر ۽ پاڇولا
 پوءِ پر جي وڃي ٿي ڪاري ميڻ جهڙي
 ڊڪنڊڙ پگهرندڙ ڪارڻ

رڳو ننڊ ۾ اچن ٿيون سارو ٿيون
 مثل تانڊائن جي روشن پيچ جهڙيون
 هڪجهڙي اُڃالي جون بي معنيٰ اڳڙيون

بچيل سچيل رحم جي نيراڻ ڪٿي
 سُڪل وٽن تي جهڪي آيو آهي آڪاس

جانورن وانگيان ڍوئيندا نظر اچن ٿا هيترا سارا ماڻهو
 نرلڄائيءَ سان
 ويندڙ صديءَ جو بوجھ
 غلاميءَ ۽ ذلت جي آخري ڪٿا

هوا ڪٿي آهي...؟

هوا ڪٿي آهي
 اُس ڪٿي آهي
 ڪٿي آهن اهي مڪڙين مان نسرندڙ هٿ

ڪٿي آهن اهي مڪڙين مان نسرندڙ هٿ
 ڪٿي آهن اهي ماڻهو جيڪي
 اسان جي اوسيٽي جي ڏوهه ۾
 بدلجندڙ موسمن جا دوکا کائيندي
 گم ٿي ويا

سُڪل پنن وانگر زمين ۾

اڪثر طوفان نشان ڇڏي ويندا آهن گذري وڃڻ کان پوءِ

پر هتي

گهر ٿي چڪا آهن ڪنڊر تائين

سيخن جي پويان

هتي ماڻهو ۽ ماڻهوءَ جي وچ ۾

ڏينهنون ڏينهن

گهري ٿيندي وڃي ٿي ماڻ جي ڌنڌ

بند گهرن ۾ پريو وڃي ٿو دونهن

رت جي جاءِ تي اسان جي رهڻ ۾

ڊوڙ لڳو آهي هاڻي مهذب هٿ جو غرور

شام جي ڌنڌ ۾ ڪري پون ٿا بنا هڏين وارا پاڇا

گهر موٽندڙ رستن تي هڪ ٻئي سان سلهاڙيل

رات جي رڪجنڌڙ آوازن مان گذرندي

اسان سڏڪن ۾ تبديل ٿيندي ڏسون ٿا پاڻ کي

رهجي وڃن ٿا جسم جا ٽڪرا دماغ ۾

هڪ آدم ادا ڪاريءَ ۾ بي چئن رهن ٿا

اسان کان ڊگها اسان جا پاڇا

جيڪي نه ڄاڻان ڪهڙي دور جي گهره کي ڍڪيندا رهن ٿا

هزارين چورس ميلن جو سنسان ڦهلاءَ

ساروئين کان ڪري پوي ٿو نه ڄاڻان ڪنهن موڙ تي

ڪو گهرندڙ تهڪ

ڪو اُجالن پريو ڏينهن نه ڄاڻان ڪٿي ڇڏائجي وڃي ٿو

نه ڄاڻان ڪٿي رهجيو وڃن ٿا سڀن اُچرجن جو سمورو پيار

سڀني ويسرن ۾ ويڙهيل اسان جي روح جو سنسار

وسن ٿا نه ڏسڻ ۾ ايندڙ ڇههڪ هرروز
 پاسراڻيون تنها ڇوڻين ٿيون نشان
 ۽ آس پاس غلامن جو هڪ اجتماعي رقص
 هلندو رهي ٿو لڳاتار هن پٿر ٿيندڙ دنيا
 جي اونداهي ۽ ۾
 جتي سڀ نشا
 ٻڏن ٿا آخرڪار
 ڪمزور دعائن جي بيٺل پاڻي ۽ ۾

هتي ڪٿي آهي
 ٽٽندڙ طلسم جو اهو هٿيار گهر
 ڪٿي آهي اهو تاريخ کان پراڻو کوھ
 جنهن ۾ ڪپيل چين جي انبار ۾
 پنهنجي ڇپ ڳولڻ جو ارادو ڪريون ٿا اسين
 هتي ايندي
 ۽ تڏهن ئي
 اسان تي ٿئي پون ٿا لڪيل بگهڙ
 نه ڄاڻان ڪهڙي سڀني جي اوٽ مان نڪري
 ڪنهن پل
 اهي حملہ آور ٿين ٿا.

اونداهيون هڪ چالاڪ مُرڪ سان
 چمڪائي رهيون آهن پنهنجا خونخوار ڏند

اسان ڪٿي وساري ايندا آهيون بربريتن جا داستان
 اسان چرڪي بيهي رهيا آهيون هڪ ٻئي کي گهوريندي
 اسان گهر سر آهيون پنهنجن هزارن سوالن ۾ دٻيل
 اسان جي جسمن مان اُڀري رهيا آهن بدلي جا وياڪل سنگيت
 پر اسان هڪ ٻئي لاءِ بي اعتبار ٿيندا وڃون پيا

مستقبل

ڪو هڪ اکر ٻڌاءِ
 ڪورنگ
 ڪو طرف
 ڪنهن هڪ ڳل جو نالو وٺ
 ڪا هڪ ڏن ياد ڪر
 ڪا جهر ڪي
 ڪو مهينو - جيئن ويساڪ
 ڪاڏي جي ڪنهن وٽندڙ شيءَ جو نالو وٺ

ڪا خبر ورجاءِ
 ڪو اعلان
 ڪو قتل - جيئن نڪسليين (★) جو
 ڪنهن هڪ جيل جو نالو وٺ

سڀاڻي تون ڪٿي هوندين
 سڌ پئجي ويندي

ٽيليفون

ٽيليفون وڃي رهيا آهن
 گجگوڙ ڪري رهيا آهن
 راج ڪاڇ هلائي رهيا آهن ٽيليفون
 ٽيليفون ڪنجهي رهيا آهن
 سهڪي رهيا آهن
 ڪاري نائي جي گهرايل ننڊ ۾

(★) Nixalites. نڪسل پاڙي سان وابسته.

پالتو جانور وانگر
اچي وڃي رهيا آهن ٽيليفون

هڪ ڏينهن اوڳاچيندا
ڍڳ سارا اخباري اطلاع، دفتری کاغذ
پريم آلاپ
گھريلو عورتون
ڪارڪنن جون چونڊون
۽ خوشحال وئشياڻن جي ڳالهه ٻولھ
ٽيليفون سڙڪن تي
راز سمورو هن اونداھي گھٽي ۽ جو
اوڳاچيندا سڙڪن تي
بي پرواھي ۽ سان
هي ٽيليفون

۽ ٽيليفون ٽيليفون کي چوندا
”پوليس موڪليو“.

چار

ڪنهن نه ڪنهن وٽ مان ڪرندو آھي
ڏسڻ ۾ نه ايندڙ چار
هن معائن ۾
ڏسڻ ۾ نه ايندڙ چار
ڪڏهن ڪھڙي طرح ڪنهن کي خبر
ڏسڻ ۾ نه ايندڙ چار

هن معائن ۾ وڌ شالا (☆) ۾

(☆) Slaughter house ڪوس گھر

انسان دشمن جمهوريت جي جادو گهر ۾
هن ٻرندڙ گهرڙي ۾

ڪنهن بادل جو اُڇليل ڏسڻ ۾ نه ايندڙ چار
پاڇن سان پريل، ڳنڍيارو

چڪي ٿو هڪ هڪ رڳ دماغ جي
پيار نٿي ڪري سگهي دشمني
نه مخالفت، نه رحم
نه پڇتاءُ، ڪجهه به نه
اسان نه...

اسان نٿا ڏيئي سگهون پاڻ کي
هڪ هوا جي لهر کي، پورٽماسي جي هڪ رات کي
صديون پراڻي هڪ سڌ کي
چڪي ٿو هڪ هڪ ڪري عمر جي سڀني ورهين کي
سڀن کي - بي حس ڪپهه جهڙو
ڏسڻ ۾ نه ايندڙ چار
ڪري ٿو سج سان ڪرندڙ ڏوڙ سان گڏ

مان ايندس

گيرؤءَ سان چٽيندينءَ تون وري
هن سال پڻ
گهر جي ڪنهن پٽ تي ڪوڙ سارا گل
۽ لکندينءَ منهنجو نالو

ڳڻتي ڪندينءَ

ته ڪيسٽائين وينديون سُڀ ڪامنائون
هزارين چورس ميلن ۾ پڪڙيل جهنگ ۾
ڪٿي ڪٿي پٽڪي رهيو هوندس مان
هڪ 'رولو' لفظ وانگر گونجندو

لفظ وانگر گونجندو

سموري دنيا جنهن جو گهر آهي

ڳڻتي ڪندينءَ

ڪڏهن تو وٽ موٽي ايندس مان
ڀاڻا (☆) جي پاڻيءَ وانگر تنهنجي اڱڻ تي

مان محسوس ڪريان ٿو

تلسيءَ جي ڍڪي تي ٻاري تنهنجا ڏيڻا
پنهنجين اکين ۾

جن ۾ ويهن ٿا انيڪ انيڪ شهر

انيڪ انيڪ پيرا ڌوڙ

جهلي جهلي سج جو هٿ

جهلي اُس جو هٿ

پشم وانگر ملائم اُجالن سان ڀريل

مان ايندس زخمن جا نشان پھري ڪڏهن

آهتون آس پاس

ڪيترا پاڇا ڪيترا هٿيار ڪيتريون دانهون

(☆) سمنڊ جي لهندڙ وير.

ڪيتريون مانيون ڪيترو لوڻ
ڪيترا نه ڏسڻ ۾ ايندڙ ڏوه

سپڪجه ڌوئي ڇڏيندڙ مينهن
پوءِ ڪيترو طوفان ڪيتري لُڪ

ڪيترو هي ڍڳُ سمورو
صدين کان ڪيتريون اڏيتون هٿ ٻڌل
ڪيڏو ڏوڏو ڏي وڻڻ جو اتهاس

ٻڌو
ڪيتريون ڪيتريون
آهتون
ڪيتريون ڪيتريون آهتون
آس پاس...

ديوتاڻن جو سڀنو

بادل گجن ٿا
۽ مينهن پوي ٿو اوهيڙا ڪري
جبل روئن ٿا ۽ نديون پير جيو اچن

زيائن جي نيري آفق جي ٻئي طرف
هڪ قديم ماڻ جي لپيٽ ۾
سمورا شور ختم ٿي ويندا آهن

تڏهن اهي عورتون اچن ٿيون جن سان
ديوتاڻن جي ديا سان 'زنا' ٿيو هو
پوءِ اهو سمورو رت اچي ٿو جو گم ٿي ويو هو

۽ سمنڊن جهڙو هاهاڪار ڪندي وهڻ لڳي ٿو

تڏهن اهي گهر ڏسڻ ۾ اچن ٿا جيڪي
بسنت جي سائي ستابي سنگيت ۾ ساڙيا ويا هئا
ظاهر ٿين ٿا تڙيون وڃائيندي پراڻا دروازا
ڪڙ ڪڙ ڪندي نچنديون اچن ٿيون دريون
جهنگلي تال گونجائيندا اچن ٿا رڌڻي جا برتن

پوءِ اهي ديوتا
جن دنيا کي هر هر رڃيو ٿي
دانهون ڪندي ناس ڪندا ويندا هئا
ڏسجن ٿا پڇندي

راج ڌانيءَ ۾ پنهنجي هڪ جنم ڏينهن تي

ڪنهن مقدس ڪتاب ۾ لکيل نه هو
ته ڪنهن منگول سورمي جي چمڪندڙ اکين جهڙيون
ٿينديون آهن سفاڪ ۽ چمڪندڙ راج ڌانيون
ڪنهن سيالڻي مون کي نه ٻڌايو هو
ته راج ڌانيءَ ۾ ٿيندا آهن ڪي چمتڪاري ملاح
جيڪي اڇلائيندا آهن هر پنجين ورهيه
ڪيئن ۽ رت پياڪ ڪارخانن ڏانهن
محاورن ۽ ڪڏهن ساڀيان نه ٿيندڙ سپنن
جو هڪ مهاچار

ڪنهن نه چيو هو
ته هي ٻارن جي بک کان ڦهليل هٿ ترين پيرسان
هيل بلاڊ ۽ لائيڪا فليڪس ڪنيو گهمڻ ٿا سياح
مُش هري جي بارود پيريل ميون مون کي ڪڏهن نه چيو هو

تہ ڪجهہ ٻيا ميا آھن جن کي رت سان ريج ڏبو آھي
۽ جيڪي پيٽا ھوندا آھن اڪيلا جھومندي
راشتر پتي پون جي باغ ۾

ختم ٿيو ھڪ ٻيو سال ھڪ ٻي ميري ڳنڍ لڳي
ھن طلسمي نگر ۾
جتي فائيلن ۾ بند حڪمن جا ڪھاڙا لڳندا آھن
۽ ڪنھن جنگم پوميا ڪنھن ڪشتا گوڙ جي ڪنڌ تي
'ڪڇ' جي ڊيچاريندڙ آواز سان ڪرندا آھن

امان، دھليءَ ۾ ٻاوهين ڊسمبر جي انھيءَ شام جو
وزير اعظم جي لان تي خوش چھرن سان ٺينگ ڏيئي رھيا آھن گھڻا مسخرا
گھڻا ئي اديب، صحافي، گھڻا ئي مسيحا
گھڻا ئي ديس جا رکوالا

سيمينٽ ۽ ڪنڪريٽ سان ٺھيل مھان آئنائون
اشوڪ ھوٽل جي ڪنوينشن ھال ۾
نچندڙ چوڪريءَ جي نرت جي لٽ ۾
گم ٿي وڃن ٿا ھٿڪڙين ۽ پيرين جا آواز

اڄ رات سمھڻ کان اڳ، مان سوچيان ٿو
مون کي
ٻاڻ کي مبارڪباد ڏيڻ گھرجي.

مان توکي نہ لکندس!

مان توکي نہ لکندس
تہ منھنجون اکيون خراب ٿي ويون آھن
مان نٿو لکڻ چاھيان تہ ھڪ جلوس ۾ مار ڪاڻڻ کان پوءِ

منهنجي ساڄي گوڏي ۾ لڳاتار سورهِي ٿو

هڪ سرڪاري شخص منهنجي پاڇي کان وڌيڪ ڪلاڪ
منهنجي آسپاس گذاري ٿو

مان لکنڊس ۽ تون روئيندين سڄي رات
ته ڪيتريون ئي شامون هونئن ئي هليون وينديون آهن
بنا ڪجهه کائڻ جي

جڏهن مان توکي لکڻ وهان ٿو
منهنجين آڱرين تي سگريت جا ڪارا داغ ڇمڪندا آهن
۽ مان قلم واپس بند ڪري ڇڏيان ٿو!

جنهن ڏينهن مان گهر مان هليو هئس

جنهن ڏينهن مان گهر مان هليو هئس

صبح صبح

ماڪ ۾ پينل هڪ آڪيروزمين تي ڪريو هو

پليٽ فارم جي پيٽ ۾ چلجي ويئي هئي منهنجي مرڪ

مون چوڻ جي ڪوشش ڪئي هئي

’الوداع‘

’في الحال الوداع‘

پر اُن کان اڳ جو اهي لفظ توتائين پهچن يا

خود منهنجن ڪنن تائين پڻ

ڪين اڏاري ڪٽي ويئي ڏوڏ ڀريل هوا

ڪاساين جي پاڙي ڏانهن

چوڄو ٻالڪڻ جي تازي رت سان ڀريل لفظن جي گهر

لڳاتار وڌي رهي هئي هن شهر ۾

دونهين سان پيريل هڪ لالئين ۽ ڪئين سال
 قاتل سوڙين ۾ ويڙهيل سرديون ۽ ڪئين سال
 ڪپريل جي ڇاپرن جي هڪ ڦڪي اداس دنيا ۽ ڪئين سال
 شام جي آسمان ۾ تنگيل هڪ ڀڳل سليٽ ۽ ڪئين سال
 هڏن ۾ سرڪندڙ موت ۽ ڪئين سال
 سال به سال چتيون لڳل سال به سال ڪنگهندڙ سال به سال
 سڪل پنن سان پيريل

لهي آيا هئا

الوداع لاءِ ڪجيا

نامعلوم ڏکڻي ۽ مرڏڪندڙ انهيءَ هٿ جي ويجهو

جيڪو تنهنجو هو

الوداع لاءِ ڪڇيل انهيءَ هٿ لاءِ هئا

اهي ڪجهه لفظ

جن کي انهن هٿن نه ٻڌو

۽ اهي ڪوس گهر ڏانهن نيا ويا

اڄ تائين ڦري ٿو منهنجي ياد جي خالي ٿڙ ۾

پليٽ فارم جي پيڙ ۾ ڏنڌلايل تنهنجو ٿڪل

لڏندڙ هٿ

جڏهن ننڊ مان جاڳندا آهن سال به سال جڏهن

لکين ورهين جا داستان واپس موٽندا آهن

ننڊ جي رستي سنسار ۾

جڏهن جيئرا ٿيندا آهن سمورا پٿر

قلمن، پارڪن، مندرن ۽ ڊرائنگ رومن ۾ ماضي اوڳاچيندي

پٽڪندو آهي اهو تنهنجو هٿ جو الوداع لاءِ اٿيو هو

۽ تاريخ ۾ جنهن جو ڪوبه ذڪر ڪڏهن نه ٿيو آهي



مان چئن سان مري به نه سگهيس!

هاڻي ڊڄڻ سان ڇا ٿيندو
هوم ورڪ ڪيم ڪين
هاڻي ڇا ٿيندو؟
مشق ڪيم ڪين
سبق ياد ڪيم ڪين
کوڙا اچن ڪين
انگ سمجهي ڪين

اسڪول گسائڻ سان ڇا ٿيندو!
جلد لکيم ڪين
ڪتابن جي بچڪي تنگي ڇڏڻ
يا لکائي ڇڏڻ سان ڇا ٿيندو!
ڪتاب ڦاڙي ڇڏڻ
يا جوڙي رکڻ سان ڇا ٿيندو!

گهر جو ڪم ٿيم ڪين
ٻاهر راند ڪرڻ ڇڏيم ڪين

ٻارن سان چيٽڻ ڇڏڻ ڪندو رهيس

اِبار ربي (Ibbar Rabi): علي ڳڙھ ۾ جنم ٿيس ۽ اُتي ئي تعليم ورتائين. ڪجهه عرصي تائين درس و تدريس سان واڳيل رهيو ۽ پوءِ صحافت سان سلهاڙجي ويو. هنديءَ جو منفرد شاعر. 1985ع ۾ ’لوگ باگ‘ شعري مجموعو شايع ٿيل. ’نو ڀارت ٽائيمس‘ سان لاڳاپيل. نيودلهي ۽ ڀرهي ٿو.

زال سان آڪٽيور هيس
 اخبار ڪٿي ليٽيور هيس
 ناول اٽلائيندو رهيس
 ڪپڙا ويڙهي رکيم
 نهن لائيم
 جوتا چمڪايم
 آچار جي بوتل صاف ڪيم
 چانهه پيئندو رهيس
 پاڙيسريءَ جو ريڊيو ٻڌندو رهيس
 هوا کي گار ڏنم
 دري کولي ڪيم
 دروازو زورائتو بند ڪيم
 ميز ڇنڊيم
 ڪتاب ٺاهي رکيم
 زندگيءَ ۾ ڪجهه نه ڪيم
 مان چئن سان مري به نه سگهيس



پدم ڌر ترپاڻي

هندي (ڀارت)

اڇن ڪبو ترن جا دڪان

ٻاهر۔

هوا ۾ لهرائيندڙ وڻ

نهن سان جهٽيل وقت جي گرمي

شيون

ماڻهو

نالا

۔ سڀ هٿن مان ڪسڪندا پيا وڃن

تڏندا پيا وڃن وعدن ۽ دعوائن جا راز

پوءِ به پاڻ کي هلڪو محسوس ڪريون ٿا اسان

ڇڻ تيز بخار لهن کان پوءِ...

اهو سچ آهي۔

پاڙي جي پڪيڙ خالي خالي آهي

بناوڻي آهي لفظن جي لڙائي،

پر عادت ئي ته آهي۔

عين موقعي تي اسان صحيح تلخيءَ جي بدران

بند منن ۾ رڳو تلخ محاورا اڏاريون ٿا

۔ يعني هڪ ڪيفيت:

پير مان لهي ويل جوتي وانگر۔

پدم ڌر ترپاڻي (Padamdhar Tripathi): هنديءَ جو نوجوان شاعر ۽ نقاد. لکڻ سان گڏ صحافت سان به

ناتو ٺاهيو اچي. 'سمج ڪوتا' ڌارا جو ڪوي. نيشنل پبلشنگ هائوس سان لاڳاپيل.

جنهن کي ڪوڙيا سڄ بنائي پاليون ٿا
پنهنجي چؤطرف
شور ۽ ٽڪل - ٻوٽيل اکين جي آڙپار...

بيڪار ناهن - ڏند يا اک: نوان يا پراڻا
- سمورين بدحواسين کان الڳ
اسان جي ضرورت هوندا آهن
- اسان کي خبر آهي: اسان جي اڳواڻي تصوير
شهر جي هن چؤڪ تي چنڊوڙائي ويئي آهي
جتي اونداهي ڊگهي ٿيڻ تي
اچن ڪپوٽن جا دڪان سينگارجن ٿا!
- ۽ پوءِ به اسان جهنڊن جي هيٺان
شهادت ڏيندڙ چؤطرف حالتن ۽
ڇڪڪندڙ گهٽتائن سان
چپ چاپ ٺاه ڪري وٺون ٿا -
چوٽه سڌي ڪارروائي ڪرڻ بدران
اسان کي سرحدن جي پابندي مفيد آهي!

اُميد آهي پوءِ به، رڳو ان لاءِ جو -
خطرناڪ تڪليفن سان گھيريل
سموري ڇڪتاڻ -
دمامي جي آواز سان گڏ
جڏهن جڏهن اوچتو ڪمزور ٿي ٿي
- هڪ انتظار وانگر هڪ ٻڪاڻي اسان
دريءَ مان ٻاهر ڏسڻ لڳون ٿا
پنهنجي خلاف - روشنيءَ جي طرف...



ليلاڌر جڳوڙي

هندي (ڀارت)

زبان ڪُشي

زبان هروقت ٻوليءَ ۾ ايترو نٿي رهي
بُڪَ ۽ سواد ۽ تُڪَ ۾ جيترو رهي ٿي
انهن ڪاريگرن مان هڪ سوچيو
جن جي زبان ۽ جنهن جا هٿ ڪپيا ويا هئا

ڳالهائڻ ۽ چڻ ٻئي نه رهيا آهن
رڳو ڏسڻ رهجي ويو آهي
۽ هاڻي نانگ بنجڻ کان سواءِ
پنهنجي ڏسڻ مان ئي ٻڌڻو آهي
ايئن جو جنهن ۾ زبان جي ڊگهي ڳالهه ٻولڻ کان سواءِ
جيڪا بنان هٿ جي، پري ڪنهن ڳوري شيءِ کي چهندڙ
دستڪار من جي گونج هجي

اهڙي گونج، جنهن کي ڪورينٽو به پنهنجي آتما ۾
ٻڌندو آهي ۽ هڪ چار ائيندو آهي
کاڌو ڦاسائڻ لاءِ

جنهن کي هرڪا آتما ٻئي ڪناري تائين ٽائي ٿي
جتان موٽيو ناهي، پر ڪورينٽو موٽي ايندو آهي
اهو ڄاڻڻ کان سواءِ ته اندر ڪيترو ست باقي آهي

ليلاڌر جڳوڙي (Leeladhar Jagudi): جنم 1 جولاءِ 1944ع، ڳوٺ ڌنگڻ، اترڪاشي (اتر پرديش). هندي شاعريءَ جو سگهارو شاعر. سندس خاص ڪتاب آهن: 'ناٽڪ جاري هئ' ۽ 'اس ياترا بر'، 'شنڪ مڪي شڪرون پر'، 'رات اڀي موجود هئ'، 'ٻچي هڻي پر ٿوي'، 'گهراڻي هڻي شيد' ۽ 'پنه پي شڪتي ديتا هئ'.

گهڻي اڃا باقي آهي انهيءَ ڏينهن جي ڳالهه ٻوله
جنهن کي چاهيندي به مان ڳالهائي نٿو سگهان
ياد اچي ٿي ڏن ۽ دماغ سان جڙيل
اها وڃايل تندرستي ۽ رسيلي زبان
جنهن تي هڪ به ڦوڪڻو نه هو ان ڏينهن

ان آخري ڏينهن واري زبان ياد آهي مون کي
هوءَ منهنجي آواز جي پاڙي ۾ لپيٽيل هئي

جهڙي ريت گونگي مٽي اُڀاري ٿي ڳل ڦل
خوشبوءَ سان جڙيل هڪ مڪمل ٽڙيل گل
اهڙي ريت مان کيس ياد رکي ويٺو آهيان

رڳو هڪ گل ئي نه زبان هڪ وڏو جهنگ آهي
هڪ پورو باغيچو

جنهن ۾ طرح طرح جا لفظ ٽڙندا آهن
جملا ڪر ڪڍندا آهن ۽ ٻولي لهرائيندي آهي

پر ان ڏينهن جي جيڪا اوندهه بيٺي آهي

منهنجي اکين ۾ منهنجي نڙيءَ ۾

انهيءَ کي جيڪڏهن مان ائين چوان ته

'جڏهن منهنجي زبان کسي ويئي'

ته شايد اهو الزام ٿيندو

شڪايت ۽ تشدد به ٿي سگهي ٿو

پڙڪائڻ واري ڳالهه به ٿي سگهي ٿي

انهيءَ ڪري مان چوندس ته پاڪيءَ جي چانءِ هيٺ

زبان جڏهن آرام ڪندي آهي

هڪ سفر شروع ٿئي ٿو ٻي زبان جي طرف

اوندا هيءَ ۾ هڪ گونگو سفر

جنهن ۾ گل اڳيئي لڳل آهن تارين تي
 چڻ ڪو جنم کان ئي سوريءَ تي چڙهيل هجي
 هڪ جو به انت ٿيندو هجي جنهن ايڪانت ۾
 ان ۾ به سڀني ماڻهن کي بيٺل ڏسان ٿو
 چڻ باغيچي جي ريلنگ سان گهيريل وڻ هجن
 جن جا ننڍا ننڍا ايڪانت جيڪڏهن جوڙي ڇڏجن
 جن ۾ اهي ڳالهائيندا ناهن رڳو اُڀرندا آهن.
 منهنجا سمورا ايڪانت جيڪڏهن جوڙيا وڃن
 جن ۾ مان چاهيان ٿو پر ڳالهائي نٿو سگهان
 ته اهو هڪ سموري جهنگ جيترو ايڪانت هوندو
 جنهن ۾ بيهي به وڻ
 پنهنجو ٻچ ٺاهڻ نٿا ڀلجن

۽ انهيءَ مان اُن سلسلي وٽ
 پهچائي سگهيو
 جتي زبان ته آرام ڪندي آهي
 پر تجربا
 هنرمند دوستن جي انهن هٿن کي چڙهي وڃن ٿا
 جيڪي ڏسڻ ۾ نٿا اچن
 پر جن جا هٿ اکر
 عمارتن کان وٺي عبارت تن ٿاڻين پڪڙندا وڃن ٿا

ائين جڏهن مان پنهنجو پاڻ وٽ اچان ٿو
 تڏهن پنهنجو شاعر رڳو بنجي وڃان ٿو
 ڪپيل زبان ۽ ڪپيل هٿن جي باوجود
 پوءِ ڪوريتو پنهنجي سٺ تي هلندو آهي
 پوءِ ماڪ موتين ۾ بدلجي ويندي آهي
 پوءِ هڪ هوا گهلندي آهي
 جا هندي سمنڊ ۾ وار سڪائي ٿي

۽ جبل جي ڌار تي بيهي
سُڪائيندي آهي پنهنجو سونهريپُٽو

اها هڪ هوا

جيڪا ڪئين هزارين ورهيه ڊگهين هوائن مان اچي

منهنجي نڙيءَ ۾ اٽڪي پوي ٿي

جيڪا لفظ اندر گهڙي طوفان اُٿارڻ چاهي ٿي

دل چوي ٿي ڪپيل چنبن ۾ ويندڙ اجالي کي

پنهنجي اَلپ زبان کي جوان

پر اها هڪ ٻي رتوڇاڻ ٿيندي

اهڙي جو جنهن ۾ سڀ دليون، سڀ سر

مشينن هيٺان

هڪ ئي بتن سان ٻاريا وسايا ويندا.

سوچيو ته جڏهن هٿ ۽ ٻولي ٻئي نه هجن

تڏهن جيڪڏهن زبان به نه هجي

ته جانور به نٿا ٿي سگهن

چو ته اهي پاڻ کي ۽ پنهنجن ٻارن کي به

ٻوليءَ سان نه زبان سان چڻيندا آهن

پر مان چهر و پنهنجو چهي نٿو سگهان

لفظ ڪو پنهنجو چئي به نٿو سگهان

نهن کان چوڻيءَ تائين مون ۾ اڃا به پيدا ٿين ٿا

سر ٻچائڻ لاءِ مان پنهنجو ڌڙ مٽائي ڇڏيان

ڇا آهي هي منهنجو، هي منهنجو سر؟

ڇا آهن هي منهنجا، هي منهنجا وار؟

ڇا اهي جذبا چئي ڪٿي ڇڏيان؟

بيچيني، هڪ اهڙي بي چيني جيڪا ڪنڊائڻ وٺڻ ۾ ٿيندي آهي

جن جو سمورورس ڪنڊن جي منهن تائين پهچندو آهي
 ۽ موتي پاڙن وٽ پنهنجا ڪن
 مٽيءَ سان ڀري ڇڏيندو آهي
 آتما جي اونداهيءَ ۾ جتي ورهين کان انتظار آهي
 ساهه جي ڪنهن هڪ ٻي آهت جو

گھڻو ڪجهه هوندي به ڪجهه ناهي آس پاس
 ڪجهه ناهي وات ۾
 ڪجهه ناهي ڄاڙين وچ ۾
 پهاڙ جي چوٽين وانگر گهري ماٺ آهي

پر رت سان ريڄيل ٿورڙي دوستي
 مون کي هر هر لهرائي ٿي ڇڏي.
 جبل جي چوٽين جي وچ ۾ اُڀريل گاهه وانگر

گلن جي ڪرڻ کان پوءِ ميون جي دنيا کان ٻاهر
 بُڪ جي سنسان ۾
 مٺ ڀريل مٽي ۽ انج جيتري اونداهي جنهن لاءِ
 ٻڄي داني بنجي وڃن ٿا.

۽ اها ساڻي ٻولي نه ٻاڻائي ٿي
 نه منجهي ٿي بلڪ تائجي بيهي رهي ٿي
 ۽ جھڪڻ سان جيڪا ٿئي نٿي بس چنبڙي پوي ٿي
 ٻن جبل جي چوٽين جي وچ ۾
 انهيءَ مٽي ۽ اوندھ کي
 هڪ جهر کي جيڪڏهن کوٽي ته پوري طرح وهنجي به سگهي ٿي
 تعجب آهي...

مان جيئن ئي ڪجهه ڪرڻ چاهيان ٿو .
 تيئن ئي ڳوليان ٿو پنهنجا ڪپيل هٿ
 ڪجهه چوڻ چاهيان ٿو ته ياد اچي ٿي ڪپيل زبان

منهنجن سمورن رشتن تي انهن ئي ٻن جا تفصيل درج آهن
جنهن کي منهنجو ڊپ هو
اُن کي انهن کان ڊپ هو
هن جي من ۾ منهنجون اهي ئي به شناختون هيون

هاڻي مون کي هڪ سڀڻو ڏسڻو آهي
هاڻين جي جهنڊ ۾
گهوڙن جي جهنڊ ۾
داڻو پاڻي کاڌل سانن جي جهنڊ ۾
ترٺفڪ جي وهڪري ۾، تائيم ٿيبل ۾
آسمان جي تالھ وانگر نچائيندڙ سڀڻو
زمين جي سر تي باغيچي وارو سڀڻو
جنهن ۾ وڻڪار جي پاڙ مان اُڀريل
هر گل جو چھرو سڃاڻپ ۾ اچي سگهي
چو ته هر چھري ۾ هڪ اڻ ڏٺل زبان هوندي آهي
جيڪا اُن جي زبان کي پري پري تائين ڦهلائيندي آهي
۽ ڏسائڻ جا هٿ سگھارا ٿي ويندا آهن

هاڻي مون کي هڪ سڀڻو ڏسڻو آهي
اهڙو جنهن جي ڇاتي لوهه جي ۽ دل گلن مان ٺهيل هجي
جنهن جي اکين ۾ دريا ۽ زخمن ۾ ڏيڍون هجن
جنهن جي آس پاس
ننڊ جي ڪارخاني ۾
ڌرتي
کير سان ڀريل ٿڻ وانگر اُڀري رهي هجي
هڪ اهڙو سڀڻو
جنهن ۾ پنهنجي ڪريل حصي کي مان ڇمي رهيو هجان
جيئن سج
اونڊاهيءَ کان ڪسي ڌرتيءَ کي ڇمندو آهي



چندرڪانت ديوتالي

هندي (ڀارت)

۽ اڃا تون مون کان پڇين ٿو!

تون مون کان سوال پڇين ٿو

۽

مان تو کان سوال پڇان ٿو

پر ڇا لفظ اسان جي وچ ۾ رزنده آهن؟

گهري اوندھ ۾ ڪوھ آھن

انساني آوازن جا وڻ آھن

ڇڻ گونگو ماڻھو هجي اڌ رنگ ۾

۽ اڃا تون مون کان پڇين ٿو۔

”اهو ڪير آهي جو ڳالهائي ٿو؟“

ڪهاڙي اُڀي نه ڪر

فرش تي انهيءَ ڪوٺلي ٽڪر سان

ڪمري کي نه ڊيچار

هي ڇپيل لفظ

جيئري ماڻھوءَ جي سُر ٻاٽن جا

پاڇا به ناهن

چندرڪانت ديوتالي (Chanderkant Deotale): گورنمينٽ ڪاليج رتلام ۾ هنديءَ جو اُستاد.

مون کي اهي نه ڏيکار
اهي ٿڌي ٿيل رک ۾
انڌين ڪوڏين وانگر آهن

تون مڙهي چو نٿو سگهين؟
پنهنجائهن لاهيان؟
مان چو نٿو ڪري سگهان۔
۔ وقت گذاري لاءِ

سمند بي سُرَت ڪريو پيو آهي
آسمان کي پڻ خبر آهي
پر هي وقت ناهي
در کولڻ جو
۽ گهٽيءَ کي ڪمري ۾ گهڙي اچڻ جو

هوا تي ڀروسو رک
هوءَ جهنگ جي ماڻ توڙي ڇڏيندي
۽ وڻ گونگا ٿي نه ويهندا
هوءَ سمند ولوڙي ڇڏيندي
۽ لفظ گججيءَ مٿان ترندا

تيسٽائين
ڳالهايل لفظ مون تي ڏنڌ ڪرڻيندا
ماڻ ڪر
۽ ريڊيو پڻ بند ڪر.



ٽڪرا ٽڪرا زندگي!

صبح:

اوجاڳي جو ٿڪ
ڪر ڪر واري چانهه
گهڙيال جي ڪاٽن تي
گهمندڙ جسم
آفيس ڏانهن سفر ۾

پيپهري:

قلمر کول
فائيل کول -
(پس منظر ۾:
راشن، ڊال، ڪنڊ، چانور، مسواڙ
اوڌر، مهمان، دوائون، شراب...)

باس -

پڙهڻ

صحي

ٽرنگ... ٽرنگ...

رات:

ڦاٽندڙ رڳون

ڪوسو بيٺر

سرد زال...

ڪنڊائون بسترو.



جڳديش چترُويدي

هندي (ڀارت)

۽ هاڻي...!

ڪا به پڪ آڻت نٿي ڏي

ڪوبه چهرو نٿو ڏي

پنهنجو چهرو پڻ

آرسيءَ ۾ جيڪو

جنوني ڪبو تر جهڙو ٿو پسجي

...

جڳديش چترُويدي (Jagdish Chiturvedi): اڪر تاجو شاعر. اڄ ڪالھ دهليءَ ۾ هندي ڊائريڪٽوريٽ ۾ ايڊيٽر.

گهر، نفرت ۽ مقدر!

هڪ ٻار جوڙي ٿو
واريءَ جو محل
پنهنجي پير سان
۽ خوش ٿئي ٿو

ٻيو ٻار
ٿڌو هڻي ڏاهي ٿو
اهو واريءَ جو محل
۽ فخر وچان ڳاٽ اوچو ڪري ٿو

ٽيون ٻار
ڪجهه به نٿو ڪري
رڳو بيهي
ماڻ ڪري
واريءَ جي محل جو
مقدر ٿو ڏسي
۽ ڏسي ٿو نفرت جي احساس کي!

اسڪول

ننڍڙو نينگر

بلديوونشي (Baldev Vanshi): شاعر ۽ نقاد. سوني پٽ برهنديءَ جو استاد. ڪيترائي شعري مجموعا شايع ٿيل.

جوڙي ٿو مٽيءَ جا رانديڪا
۽ انهن جي سڪڻ جو
ڪري ٿو انتظار

پوءِ هُو سڪي ويل رانديڪا
ميڙي رکي ٿو پنهنجي چوڌاري
۽ فخر و جان ڳاٽ اوجو ڪري ٿو

ڦڙتيءَ سان پوءِ هو
پيچي ڇڏي ٿو
اهي سڀ مٽيءَ جا رانديڪا
۽ کلي ٿو خوشيءَ مان

هيءُ تن ورهين جونينگر
ڪٿان سڪيو
هي سمورو علم!

●●●

سوال

اوچتو
منهنجي ڀر ۾ ويٺل ٻار
جيڪو ماڻ ڪريو ويٺو هو
گڏيل سوال پڇيو -
اسان جو ڪو مستقبل آهي؟

مان اُن مهل
ڪا به واهيات شيءِ
ڪرڻ جي ارادي کان
وراندِي کان ٻاهر
سڙڪ ڏانهن نھاري رھيو هوس
اھو ٻڌي ڏانھس مڙيس

جيتوڻيڪ مان ڪو صحيح جواب نٿي ڏيئي سگهيس
تڏهن به چيم -
دريا ارڏائيءَ سان وهي رهيا آهن ۽
جلن ڏانهن موٽي رهائش اختيار ڪرڻ وارا آهن

هُن اهو ٻڌو يا نه
پر اڃا ٿورو وڌيڪ سُرِي

اشارو ڪري مون کي چيائين -
'پيا! ڏس ڪٿو ڪڏ ۾ ڪري پيو آهي!'
مون ڏٺو:

چار پنج ٻار
تاڙيون وڄائيندا ڪٽي جي چوڌاري نچي رهيا هئا
مون کي ڏاڍي ڪل آئي ۽
هر پٺ ٽپا ڏيندو هليو ويو
۽ انهن ٻارن جي ميڙ ۾ وڃي شامل ٿيو
مون محسوس ڪيو
ساڳي ريت ڪنهن جي تاڙين سان
سڀ ڪجهه ائين گذري ويندو

مان اندر ويس
منهنجي زال مورتين ۽ تصويرن اڳيان تاڙيون وڄائي
پيڄن ڳاڻڻ ۾ محو هئي
اندر تاڙيون - ٻاهر تاڙيون
جبل کان دريا تائين اهو سفر ڏڪجي پيو
۽ انهيءَ سوال کان پري
اهو ٻار ڪيڏي پيو

مون کي بک جو احساس ٿيو
مون پنهنجي زال جو ڌيان ڇڪائڻ جي ڪوشش ۾
تاڙيون وڄائي
پاڻ کي رڌل رکيو.



کیدارنات کومل

هندي (پارت)

شاعر اڃا جيئرو آهي!

هن جو نالو هو
بهار جهڙو
ڪڏهن ڪڏهن
جيڪڏهن ڪو سندس نالو ڪڏهنو آهي هاڻي
هڪ پوائتي روشني
ورائي ويندي آهي مون کي

پيار جي آڙسيءَ ۾
ڪومايل گل
دل
چوڻي ورجائين
اها غلطي
هروقت

اوندا هيءَ جي سمونڊ ۾
ڪو تائون
پائمرادو هليون اينديون آهن
دل ۾ نه ڪجانءِ دوست جيڪڏهن
ڪجهه بيهودو چوانءِ

سج ڏيا ٻاري تو

کیدارنات کومل (Kedarnath Komal): سندس ڪافي شعري مجموعا ڇپيل آهن.

اُميدن جا ۽
خوش ٿئي ٿو هر روز
پر ماڻهو
اندو ماڻهو
وڃائجي ويو
اوندا هيءَ ۾

بُڪ رنو هو
صديون اڳي
هٿ ٻڏي ايلاز ڪندي:

بُڪ روئي ٿي
اڄ پڻ
نئين اسٽائيل سان، نئين ميڪ - اپ سان

هڪ هڪ ٿي
سڀيئي اهڃاڻ ٿئي پيا آهن
خيال پٽڪن پيا جهنگل ۾
شاعر اڃا جيترو آهي ميوزيم ۾

دولتمند بيچئني محسوس ڪن ٿا
مهاڻن جي وحشي سنگيت جي ڪاڻ
غريب پٽڪن پيا
ننڍڙين محبتن جي ڪاڻ

●●●

نسل ڪُشيءَ جو پڌرنامو!

جبلن تان هيٺ ڀرندي
مان شهر جي ديوارن ۾ گھڙان ٿو
جتي هو پنهنجون قبرون کوٽڻ ۾ رڌل آهن

هي پاڪ زمين
هڪ وڏو قبرستان آهي
جتي جا حاڪم وڏا ڪوٺا آهن

۽ مان؟...
مان اڳيئي ڪفن ۾ آرام سان پيو آهيان

مان بيشڪ رڙيون ڪري سگهان ٿو
مون کي لکڻ لاءِ پني - ٽڪر ته ڏيو
پر هڪ سڪل ماني - ٽڪر لاءِ پڻ
پئڪڻ جي جرئت نٿو ڪري سگهان

منهنجي حاڪمن کي رڳو هڪ لفظ جي خبر آهي:

توس

ان کان سواءِ سندس وڏي ميڄالي ۾
نڪر پيو لفظ آهي نه ٿيون.



شري ڪانت ورما

هندي (ڀارت)

جلسه گهر

اهوئي سوچيندو لنگهي رهيو آهيان

ته لنگهي ويئي پريمان گولي

سرڙاٽ ڪندي

ڇا ڪٿي ڏاڙو لڳو آهي؟

انقلاب ته نه آيو آهي؟

ڪجهه به هجي

مان هلندي رهڻ کان سواءِ ڪجهه ڪري نٿو سگهان

بس هڪ نقشي جي آريار ملڪ کي ڏسندو رهان ٿو.

هر سال هن جو چهرو بدليجي وڃي ٿو

ڪڇ هجي يا چين

تيسٽائين بي گولي

سرڙاٽ ڪندي

حد ٿي ويئي، ڪجهه چوڻو ئي پوندو

نه ادا، ڪا حد ڪانه ٿي آهي

هليا اچو اندر، مون کي اگهاڙو ڪريو

پنيءَ تي چمڪ هڻو

منهنجي چهر تي لکي ڇڏيو ”هي گڏهه آهي“

پر هر شخص پنهنجي ڪرسيءَ سان جهڻو پيو آهي

۽ پنهنجي بي حياتي چوڏهن پيسن جي ڦٽوتي سان سنواري رهيو آهي

شري ڪانت ورما (Shrikant Verma): چار شعري مجموعا، هڪ ناول ۽ ٻه ڪهاڻين جا مجموعا ڇپيل.

يونيورسٽي آف وراڻا، راجيه سڀا انڊيا جو ميمبر ٿي رهيل.

وڃ چڪلي ۾ وڃ، ڦاٿل فراسيءَ تي ٽپا ڏي
 جهنم ۾ وڃ، مناري تي چڙهي وڃ
 اُڀرندڙ محبت ۽ ضدي خواهش ۽ هٽڪندڙ غصي کي گهٽو ڏيئي ڇڏ
 پر انهيءَ سان ڇا ٿيندو؟
 ڪجهه به نه - مان ته بس پاڻ کي خالي ڪري ٿو ڇڏيان
 جيئن اڃا گهڻو پونءِ سان ڀرجي وڃان
 ايگزيما هجي يا خارش، موهيٽا هجن يا ڏڍ
 مٿرا جو سور داس ملهه استعمال ڪريو

ڇا چيو؟ سانڍي جو تيل؟
 نه پائي نه
 وهريل عورتون وڃي سگهن ٿيون
 ادا جهڙو به آهيان مون پنهنجي زندگي گهاري ڇڏي
 نه ادا نه
 سڀني هنڌاڻا وڃي ٿين...
 پاپ سنسار ۾
 وزير طبيلن ۾
 ڪوڙا جڙتو ماڻهو شرمگاهن
 ۽ آفيسر چمخانن ڏانهن وڃن
 مينهن نه وسندو
 شه سرخين سان ڪچا ڪچ ڀريل راڄڌانيءَ کان سواءِ
 سڀ مري ويندا
 پيٽ ۾ سور آهي؟
 هاڻي ئي انجيڪشن لڳرايو گيهه جو
 اگهه ٻيڻو ٿي ويو
 لڳي ٿو هر شيءِ بي رس ٿي ويئي
 ڇا چيو؟
 نه نه مٿرا جو سور داس ملهه ته مفيد آهي
 ايگزيما هجي يا خارش، موهيٽا هجن يا ڏڍ...

حڪومت ڪابه هجي مان ڪنهن جا شرط نٿو مڃان
 ڪنهن جو دليل نٿو ٻڌان

ته سائين هن منهنجي دشمن کي ماري ڇڏيو آهي
 نه ادا، منهنجو ڪروڪيل ناهي
 آدمشماريءَ کان اڳ ئي مان هر ڪُڇي مان ڪُڇ ڪري ويندس
 هر بيلٽ باڪس ۾ هڪ ووٽ گهٽ ٿي ويندو
 مان ڪنهن جا شرط نٿو مڃان
 ڪچا ڪڇ پيريل سڙڪن تان، هجوم مان، مڪين جي ميڙ مان
 هڪ هڪ ڪري مون کي پنهنجن سڀني دوستن مان لنگهڻو پوندو
 'سنيالي هل ڙي' بري طرح لغويت مون کي هيڏانهن هوڏانهن ڌڪا ڏي ٿي
 گهيرو ڪري ڪٿي وٺي ٿا وڃو مون کي
 ڇڏي ڏيو، مون کي ڇڏي ڏيو... نه ته
 ۽ نه ته جي اڳيان بس استاپ آهي
 جنهن جو منهن ڪنهن طرف ناهي
 اڙي مون کي به بس استاپ ناهي ڇڏيو نه
 مون کي هستيريا ۾ هميشه لاءِ پٽڪڻ لاءِ ڇڏي ويو آهي

آنرري سرجن... مشوري جو وقت: پنجن کان ست -
 مون کي بچايو، منهنجي وات جو ڌاڻو بدلجي رهيو آهي
 سنڌي سنڌي
 هتي رهندي مان ته هتي جو ٿيڻ لڳو آهيان
 شام ٿي
 بدلائي ڇڏيو پنهنجي ملڻ جو وقت، بدلائي ڇڏيو
 هي وقت اهو وقت ناهي

ڏک، ڏي وٺ، استاڪ جيڪو وڪاڻو ناهي
 حادثا، ويشياڻون، گهيرو
 ڪميونسٽ پارٽيءَ جو 'عوام'
 جن سنگهه جي 'گڻو ماتا'
 جيڪي ڪري چڪا انهيءَ جو پڇتاءُ
 جيڪي نه ڪري سگهيا انهيءَ جو پڇتاءُ

انهن سڀني خدا بخش زناني جي بي سبب موت کي لپيو ڏنو
 چڱو تعزيراتي ڪارروائي شروع ڪئي وڃي
 اڙي تون بچي وئين
 هونئن مان ميان ٿو هن پيري مان توکي سڃاڻي نه سگهيس
 ماڙين تان، بستر تان، ڏاکڻين تان
 الائي ڪڏهن کان لهي رهيون آهن گڏ گڏ
 نيريون، پيليون لڄايل
 هڪ ٻئي سان پاڪر ۾
 هن آخري ڏيک کي ڳڙ ڪائي رهيون آهن

نجومِي مستقبل کي پنهنجي آڱر تي رکي ٿو
 ۽ واڻيو پنهنجي تجوڙيءَ ۾
 انهيءَ چوريءَ جو راز اڄ کليو
 جنهن تي مسٽر ٻڌو سنگهه کي ٽي ورهيه اڳ خواهه مخواهه اندر ڪيو ويو هو
 کليل کليل لڳي ٿو
 پر هونئن سچ پچ، ڊنل ڊنل
 ساڻو ستابو جيڪڏهن سڙهون (88) ماڻهو
 مون ڇا ٺيڪو ڪٺو آهي باقي نوانوي جو؟
 پوءِ

دير هونئن به ٿي چڪي
 گذرندڙ ڪانءُ
 شطرنجي نقشي تي اچي ويٺا آهن
 زمين جو حساب پيو ٿئي
 مون کي انهيءَ سلسلي ۾ 'کان کان' ڪرڻ جي اجازت ڏيو
 معاف ڪريو، مون کي ڇڏي ڏيو
 آزاد ڪرڻ لاءِ بچيو ٿي ڇا آهي هاڻي
 هڪ ٻيو 'اشنان' ڪري وٺان۔ جادوءَ جو اُتار هڪ پيرو اڃا سهي

ڏسون ٿا منهنجي ته هر شيءِ دشمن هئي
پر ڏسون مون شاعريءَ کي ممڪن بنائي ڇڏيو
۽ خود به ڪجهه بنجي ويس..... مهرباني آهي اوهان جي

ڪو معصوم فرزند ئي ماڻ کي توڙيندو آهي، غلط ناهي
درياري نٿا توڙي سگهن
هيئن آهي ته سون ۾ توريل ڪمان کان سواءِ
هر شيءِ ٿئي پوندي آهي
ڇا ٿيندو روئڻ سان؟
بيوهه اوباسي ڏيندي چوي ٿي
۽ سمهڻ هلي وڃي ٿي
ڇنگيءَ جو منشي ۽ مينهن جو دلال
سجودينهن کيس ٺوڪين ٿا
مان پڇان تو وقت به ڏسن ٿا يا نه
مون کي ته شڪ آهي
انهن مان هڪ کي سوزاک آهي
۽ ٻئي کي ڪنڊ جي بيماري آهي
رکي رکي خوف پيدا ٿيندو آهي
هر هر گھراڻو مزدور آهي
ڇا مان انهيءَ طرح لنگهي وڃان جيئن آهيان؟
ڪنهن به هنڌ ترسڻ کان سواءِ
ڪنهن به شيءِ ۾ مبتلا ٿيڻ کان سواءِ
ڇا ائين ئي لنگهي وڃان
اي مالڪ مون کي معاف ڪر
مان سپاڻي طئه ڪري ٿي وٺندس
(سپاڻي جڏهن فيصلو ٿي چڪو هوندو)



سریشور دیال سکسینا

هندي (پارت)

نيريون جهر ڪيون

تنهنجي اکڙين تان اڏريون

نيريون جهر ڪيون

منهنجي ڪلندڙ چپن تي ويهي رهن ٿيون

— لفظ چڱو لڳن ٿيون

۽ مان جڏهن بي لفظ ٿي وڃان ٿو

تڏهن اُهي وري منهنجن چپن تان اڏري

تنهنجين اکين ۾ هليون وڃن ٿيون

هر پيري

مان ماڻ رهجي وڃان ٿو

۽ تون

نهاريندي

بگهڙ

(1)

بگهڙ جون اکيون ڳاڙهيون آهن

کيس تيستائين گهوريندو ره

سریشور دیال سکسینا (Sarveshwer Dayal Saksena): جنم 15 سيپٽمبر 1927ع، بمبئي (اُتر پرديش) ۾. بنارس ۽ پرباگ يونيورسٽين ۾ تعليم حاصل ڪيائين. هنديءَ جي نئين شاعريءَ جي اهم ترين شاعرن ۾ شمار ٿئي ٿو. شاعريءَ کان سواءِ ڪهاڻيون، ناول ۽ ناٽڪ پڻ لکيا اٿس. شاعريءَ جا مجموعا: 'جنگل ڪا درد'، 'ڪٿائون ندي' ۽ ڪونٽيون پر تنگي لوگ؛ ۽ ناوليت: 'پاگل ڪٿون ڪا مسيحا' ۽ 'سويا هوڻا جل' ڇپيل اٿس. 1983ع ۾ دهليءَ ۾ ديهانت ٿيس.

جيستائين تنهنجون اکيون
 ڳاڙهيون نه ٿين
 ۽ تون ڪري به ڇاڻو سگهين
 جڏهن هو تنهنجي سامهون هجي؟
 جيتوڻيڪ تون منهن لڪائي پڇندين
 ته به تون کيس
 پنهنجي اندر ساڳيءَ طرح بيٺل ڏسدين
 جيڪڏهن ٻڃي وئين

بگهڙ جون اکيون ڳاڙهيون آهن
 ۽ تنهنجون اکيون؟

(2)

بگهڙ ڏاڙهي ٿو
 ون مشعل ٻار
 ن ۾ ۽ تو ۾
 بنيادي فرق اهو آهي ته
 بگهڙ مشعل ٻاري نٿو سگهي
 هاڻي تون مشعل ڪڍ
 بگهڙ جي ويجهو وڃ
 بگهڙ پڄي ويندو
 ڪروڙين هٿن ۾ مشعل ڪٿي
 هڪ هڪ ٿي ٻوڙي ڏانهن وڌو!
 سڀ بگهڙ پڄي ويندا
 ۽ پوءِ کين جهنگ کان ٻاهر ڪڍي
 برف ۾ ڇڏيوس
 بکايل بگهڙ هڪ ٻئي کي ڏاڙهيندا
 هڪ ٻئي کي چيري ڦاڙي کائيندا

بگهڙ مري چڪا هوندا
۽ تون؟

(3)

بگهڙ وري ايندا
اوجھو
اوهان مان ئي ڪو هڪ ڏينهن
بگهڙ بنجي ويندو
هن جو ڪٽنب وڌڻ لڳندو
بگهڙ جو اچڻ ضروري آهي
تو کي پاڻ سڃاڻن لاءِ
بي ڊيو ٿيڻ جو سڪ ڄاڻڻ لاءِ
مشعل کڻي سڪڻ لاءِ
تاريخ جي جهنگ ۾
هر پيري بگهڙ غار مان ٻاهر آندو ويندو
ماڻهو جوش وچان گڏ ٿي
مشعل کڻي اٿندا

تاريخ زندهه رهندي
۽ تون پڻ
۽ بگهڙ؟

ڳاڙهي سائيڪل

سڄي رات
هڪ ڳاڙهي سائيڪل
ڪنڊائين واڙ سان ٽڪيل
اڪيلي بيٺي رهي

پوليس جون سيتيون وڃنديون رهيون
سندن ڳورن بوتن جا آواز ايندا رهيا

صبح ساجهر هڪ ٻار ڪٿان کان آيو
۽ ماڪ پئل ٿڌي گھنڊڻي وڄائڻ لڳو
گھر گھر ڪندي هڪ ڪاري ڳوري گاڏي
سائون وڄائيندي بيهي رهي
ٻار گھنڊڻي وساري
گاڏيءَ جي ڇت تي چمڪندڙ
نيري روشني ڏسڻ لڳو
پوءِ گاڏي کيس ڪٿي هلي ويني

پھريون گھمرو مان پنهنجي ڪمري جي فرش تي
درين جي چيڙن تي پاڇا پوندي ڏسي
ڊڄي ويس!

هڪ نئين اُڃ

مان ڪڏهن چوان ٿو
ته منهنجي گھر ۾
در دريون ۽ منگھ نه لڳاءِ
ڪاش تون انهن سان ئي گھر ٺاهي سگھين
پيتيون نه هجن ها۔
چو ته مون کي
سانوڻ جي گلابي ڦوهار کان وٺي
پڍي جي سانوري مينهن تائين وٽندا آهن
مون کي برف جهڙي چانڊوڪي
۽ باهه جهڙو سج

ٻئي پيارا آهن، ڏاڍا پيارا
 منهنجي دعا ته رڳو ايتري آهي
 ته منهنجي هن گهر جي ڪنهن ڪنڊ ۾
 هڪ ننڍڙو ڪمرو اهڙو به رهڻ ڏي
 جتي مان اگر ٻي ٻاري سگهان
 جتي مان ڪجهه سنهڙا، رنگين سڳنڌ پريا
 گلن جا گيت پريل ڪاغذ
 رابيل جي ڪچين مڪڙين سان رکي سگهان
 جتي مان ڪڏهن ڪلندي ڪلندي ٽڪجي پوڻ کان پوءِ وڃي
 ڪنهن ست رنگي ڪپڙي سان
 پنهنجون آليون اڪيون اُگهي سگهان
 جتي مان پنهنجي اندر جي سموري هوسات
 انهن خاموش گلن جي وچ ۾ بند ڪري اڃان
 جيڪي هيڪلاهيءَ جي ٻسي تاريءَ تان
 اڻ رڪيا وهندا رهندا آهن
 جتي پهچي
 مان ڪنهن پوڄا - گيت جي پوتر ڪڙي بنجي پوان
 ۽ ڪن سنگيت پريل قدمن تي
 ڪي ڪن پنهنجو مٿو ڌري
 سپڪجه وساري سگهان
 جتي وڃي مان پنهنجي اندر جون
 ديوارون ڊاهي سگهان ۽
 تازي هوا،
 طوفان،
 ڦوهار،
 چانڊوڪي،
 آس،
 سڀنيءَ لاءِ هڪ نئين اُچ ڪٿي
 هميشه لاءِ واپس اچي سگهان

نقشو

هڪ ٻار نقشو ٺاهي ٿو
 توکي سڏ آهي ته هو ڪيڏانهن وڃي ٿو؟
 هڪ ٻار نقشي ۾ رنگ ڀري ٿو
 توکي سڏ آهي ته هو ڪيڏانهن ويو؟
 هڪ ٻار نقشو ڦاڙي ڇڏي ٿو
 توکي سڏ آهي ته هو ڪٿي پهتو؟

جيڪڏهن توکي سڏ آهي
 ته ماڻ ڪري ويهين ها
 اهڙيءَ طرح



مان انهيءَ عورت اڳيان جھڪان ٿو!

رات جو بالو جي واڇوڙي ۾

مون کي هر هر چڪي ٿي

ڪنهن جي محبت

سپنن جي سنسار ۾ هن جو چهرو نٿو ڏسجي

هن جو آواز ٻڌي شايد

مان هاڻي کيس سڃاڻي نٿو سگهان

هوءَ ڪنهن خاموش روڊ تي

پنهي پاسن کان پينل وٺڻ جي وچ ۾

وار کولي هلندي پيئي وڃي

مان دانهن ڪريان ٿو

ڪو آهي جو کيس بچائي

هوءَ ڪٿي تيزيءَ سان ڊوڙندي ڪار جي هيٺان نه اچي وڃي

پوءِ هن جي محبت جو ڇا ٿيندو؟

گرم هوا ۾ مان ساهه کڻي رهيو آهيان

بالو جي واڇوڙي ۾ اڪيون کولي رهيو آهيان پر

روڊ تي اها عورت ناهي
 نه ئي ڪاٺي ڪارجيڪا ايندي هجي
 نه رت جا داغ، نه ڪنهن جي مرڻ جو ڪو نشان
 نه وڻ ۽ نه ئي ڪو روڊ

مون کي چڱي طرح ياد آهي
 مون ڪنهن پاڇي سان نه پر
 هڪ عورت سان ڪئي هئي محبت
 سندس هنج ۾ پنهنجو منهن لڪائي رنو هئس

مان انهيءَ عورت اڳيان جهڪان ٿو
 جيڪا منهنجي انويو ۾ آهي
 ۽ اجهو هاڻي ڪنهن خاموش روڊ تي
 هلندي هلندي اوچتو الوپ ٿي ويئي آهي

هن ئي هنڌ

نيڪ هتي ئي ويٺي هئي هوءَ
 آئي هئي سهڪندي ڏاڪڻ چڙهي
 ۽ ڀرجي ويو هو ڪمرو تهڪڙن سان
 جهاتي پائي ڏٺو هئا ٽين هن دريءَ مان
 پري پري تائين آڪاس

چوڻ لڳي
 هتي ئي رهنديس
 ڪجهه ڪنديس
 تڏهن منهنجو دوست جيڪو آيو هو هن سان گڏ

وينو هو دروازي ڀرسان گهر سڻ
هيءَ ميز اُن وقت خريدي نه هئڻ

هن مرڪندي چيو
ڳولينديس هتي ئي ڪو ڪم
نه موندنديس گهر
ڳالهين ئي ڳالهين ۾
مون ڇپ ڇاپ چورائي ورتا هئا سندس وار
هوءَ ڪلي رهي هئي
۽ ماڪ وانگر جرڪي رهي هئي

هوءَ ڪيترائي ڀيرا جرڪندي ويئي
رڌڻي ۾
مهينو ڪن هتي ئي رهي

انهيءَ وچ ۾ هلي ويئي
ڪئين ڀيرا ڇت تي
تڏهن ڏٺا هن تارا

مهينو ڪن اسان ڊوڙندا رهياسين
ڪم جي تلاش ۾
هوءَ به ڊوڙندي هئي پويان پويان

هن جو بلا تونز رت هائو ٿي ويو هو
پنيءَ تي ڪنهن ڪئين ڀيرا چڪ هنيا هئا
اونهارِي جي موسم هئي
اسان ويٺا هئاسون ڇت تي
هڪ ڏينهن آيو سندس پيءُ

هن چيو:

تون هل مون سان گهر، پوءِ اچ

پاگلپور کان آيل اها چوڪري

هلي ويني اوچتو

چئي ويني:

مان اينديس ٿورن ٿي ڏينهن ۾

گهر بهاريم ته ڏنم

منهنجي ڪمري ۾ هئا سندس سڀنا

ڪنڊن ۾ ڪريل هيون

خواهشون

ڊاٽري اٽلايم ته ڏنم

چنبڙيل هئي ڪاغذ تي

سندس پينل خوشبو

ڪجهه ڏينهن ٿيا ته سندس

سهيليءَ ٻڌايو:

جيڪو دروازي پرسان ويٺو هو گهر ۾

شادي ٿي ويني هئي هن جي

هونئن هوءَ ڏاڍي رني هئي

هن جو مڙس شرابي نڪتو

پوءِ ڳوٺ ۾ ڦهلي مليريا

ته مري ويس سندس ٻار

ڏهن سالن ۾ ٿي ويٺي پوڙهي
 ڇاتيون ڍرڪي آيون
 هڪ ڏينهن هوءَ پيڇي نڪتي
 ڏاڏڻ جهڙي وري ٿي ويٺي گم
 خبر ٿي نه پئي
 ڳوٺ ڪٿي جو به نه ڇڏيو هو
 پوءِ ڪنهن به سندس خبر نه ورتي

ٺيڪ هتي ئي ويٺي هئي هوءَ
 آئي هئي سهڪندي ڏاکڻ ڇڙهي
 ۽ پير جي ويو هو ڪمرو تهڪڙن سان
 جهاتي پاڻي ڏنو هئا ٽين هن دريءَ مان
 پري پري تائين آڪاس
 هن جا وارا اڃا تائين مون وٽ پيا آهن
 اُهي سونهري ٿي ويا آهن
 هن جون خواهشون پليون آهن منهنجي پيٽيءَ ۾
 اُن مان خوشبو پئي اچي

هوءَ وهنجڻ جي جاءِ ۾ نه رهي آهي
 يا ڦاٿل آهي رڌڻي ۾
 يا ڪنڊ ۾ ويهي ڪجهه پڙهي رهي آهي
 يا سمهيل آهي ننڊ ۾



بابا جي تصوير

بابا جي جوانيءَ جون ننڍيون ننڍيون ڪوڙ ساريون تصويرون آهن
اهي سموري گهر ۾ وڪريل آهن
سندس اکين ۾ ڪا خوبصورت شيء
چٽي چمڪندي ڏسجي ٿي
اها شايد چڱائي آهي يا ساهس آهي يا اميد
تصوير ۾ بابا ڪنگهي نٿو
ويا ڪل نٿو ٿئي
سندس هٿن پيرن ۾ درد نٿو ٿئي.
هو جهڪي نٿو، ٺاه نٿو ڪري

هڪ ڏينهن بابا پنهنجي تصوير جي پيرسان
بيهي رهي ٿو ۽ سمجهاڻ لڳي ٿو
ڄڻ ماسٽر ٻارن کي
ڪنهن نقشي جي باري ۾ ٻڌائيندو هجي.
بابا چوي ٿو مان پنهنجي تصوير جهڙو نه رهيو آهيان
پر مون جيڪي نوان ڪمرا ٺاهيا آهن
هن پراڻي گهر ۾ اهي تون ڪڏ
منهنجي چڱائي ڪڏ انهن براين سان مقابلو ڪرڻ لاءِ

منگليش ڊبرال (Manglesh Dabral): جنم 16 مئي 1948ع. ٽهري گڊوال (اُتر پرديش). هنديءَ جو
ڪوي ۽ صحافي. 1981ع ۾ پهريون شاعريءَ جو مجموعو ”پهاڙ پر لالئين“ 1982ع ۾ اوڀر پرڪاش
ساهتيه اڀارڊ. ٻيو شاعريءَ جو مجموعو ”گهر ڪا راستا“ 1988ع ۾ شايع ٿيل. اڄ ڪالھ ’جن ستا‘ هندي
مخزن جو ايڊيٽر.

جيڪي توکي پنهنجي رستي ۾ ملنديون
تون منهنجي ننڊ نه ڪڍ منهنجا سڀنا ڪڍ

مان آهيان جو فڪر ڪريان تو پریشان ٿيان تو
جھڪندو آهيان ۽ ٺاه ڪندو آهيان
هٿن پيرن ۾ درد کان ڪنجهان تو
بابا وانگر ڪنگهان به تو
ساهس ۽ اميد جي لاءِ
دير تائين بابا جي تصوير کي ڏسان تو

ڏاڏي جي تصوير

ڏاڏي کي تصويرون ڪڍائڻ جو شوق نه هو
يا کيس وقت ئي نه مليو
سندس رڳو هڪ تصوير ميري ۽ پراڻي پٽ تي ٽنگيل آهي
هو خاموش ۽ گنپير ويٺو آهي
پاڻي سان پريل بادل وانگر
ڏاڏي جي باري ۾ ايتري ئي خبر اتر
ته هو مڱندڙن کي خيرات ڏيندو هو
ننڊ ۾ بيچڻي ۽ وچان پاسا ورائيندو هو
۽ صبح جو اُٿي بستري جا گھنج ٺيڪ ڪندو هو
مان تڏهن تمام ننڍو هئس
مون ڪڏهن سندس غصو نه ڏٺو
سندس خسي سڀڻو نه ڏٺو
تصويرون ڪنهن ماڻهوءَ جي لاچارِي نٿيون ڏيکارين
امان چوندي آهي جڏهن اسان
خاموشي، خوف ۽ رات جي
عجيب جانورن سان گهيرجي سٽل هوندا آهيون

ڏاڏو هن تصوير ۾ جاڳندو رهندو آهي

مان پنهنجي ڏاڏي جي ڏوڳو نه ٿيس

خاموش ۽ گنپير نه ٿيس

پر مون ۾ ڪجهه آهي ساڻس ملندڙ جلندڙ

اهڙو ئي ڪروڙ آهي اهڙو ئي خسي سڀڻو

مان به لاچار ڪنڌ جهڪائي هلندو آهيان

جيئن ڏو آهيان هر روز

پاڻ کي هڪ تصوير جي خالي فريم ۾

ويهي ڏسندي.



مون هڪ ڪوٽا لکي آهي!

مون هڪ ڪوٽا لکي آهي
اهڙي سٺي
جهڙي مان لکي سگهان ٿو.

هيءَ ڪوٽا جيڪڏهن مان
بکڻي ماڻهوءَ کي ٻڌايان
ته کيس ڪيئن لڳندي!

ڪينسر جي مريض کي
ڪيئن لڳندي!

فرض ڪريو مون کي خبر هجي
ته سڀاڻي مون کي ڪو گولي هڻندو
ته خود منهنجي ئي ڪوٽا اڄ مون کي ڪيئن لڳندي!



وشوناتِ تريپاڻي (Vishvanath Tripathi): جنم 1933، اتر پرديش جي بستي ضلعي جي بسڪوهر
ڳوٺ ۾. ايم. اي ۽ پي. ايڇ. ڊي. هنديءَ جو نامور نقاد ۽ شاعر. آڇاريه هزارِي پرساد دويدي سان گڏ 'سنديش'
راسڪ' جو ايڊيٽر. 'پرارنيڪ اوڌي'، 'هندي آلوچنا'، لوڪ وادي تلسيداس' ۽ 'جيساڪھ سڪا' ڪوٽائن جا
مجموعا شايع ٿيل. دهلي يونيورسٽيءَ سان لاڳاپيل.

وشونات پرساد تیواری

هندي (پارت)

ڪتاب

نه، هن ڪمري ۾ نه
هوڏانهن
هن ڏاکڻ هيٺ
هن گئريج جي ڪنڊ ۾ ڪٿي وڃ
ڪتاب

اُتي جتي نئورڪي سگهجي فرج
جتي نئولڳي سگهي آدم قد شيشو

ڳوٺ ۾ ٻڌي
تڏي سان ڍڪي
ڪجهه تختي جي هيٺان
ڪجهه تٽل ڪُونڊين مٿان
رڪي ڇڏ
ڪتاب

ڪٿي وڃ اهي
ڪنهن لائبرريءَ يا آرڪائيو جي آفيس ۾
يا چاهين جتي
اسان کي ته ورثي ۾ گهرجن

وشونات تیواری (Vishvanath Tivari): هندي زبان جو شاعر ۽ نقاد. رچنا ۽ آلوچنا جي رسالي 'دستاویز' جو ايڊيٽر. سندس ٽي شعري ۽ پنج تنقيد جي موضوع تي مجموعا ڇپيل. گورکپور ۾ هندي شعبي ۾ اُستاد.

ڪتاب

ڪو جهڻ هڻندو پاس بُڪ تي
 ڪو ڳوليندو لاڪر جي چاهي
 ڪنهن جي اکين ۾ چمڪنديون سرسبز
 بنيون ۽ ڪيٽ
 جتي آهن پوريل سونا سڪا پڻ شايد
 هاءِ هاءِ وقت
 پوڙهي ڏاڏيءَ وانگر
 اُداس ٿي ويندا.
 ڪتاب

ڪتاب!

جتي به رڪن آهي توکي
 پيارهجو انتظار ۾
 ايندو ڪونه ڪو
 غلط فهميءَ مان ڀڙڪيل ٻار ضرور
 ڪنهن سال
 اونداهي ۾ ڳوليندو پنهنجو رستو
 ڇههءَ سان سڃاڻي وڻج کيس
 آهستي آهستي کولي ڇڏج پنهنجو اندر
 جنهن ۾ سمهيو پيو آهي انت وقت ۽
 ٽڪل سڄ،
 دٻيل غصو،
 ۽ گونگو پيار،
 دشمنن جو ميتل ڊڪٽيٽر
 قابو نه ڪري سگهي جنهن کي

سُڪ

ڪَلندي ڪَلندي اُڏامندو وڃي رهيو آهي هُو
ڪرڻ وانگر جبلن جي پريڻن ۾

ننڍ ۾ مليو هو هُو
ڳاڙهي پوتيءَ ۾
بُڪ ۾ ڏنيون ٿي ٿالھ جون ڪُنڊون
هڪ سياري جي رات جو باھ جي مچ ۾ سان
آيو هو دپيل پيرن سان
برڪا ۾ چمڪيو هو
هڪ پيرو ڪن پل لاءِ

هُو ڪيڏانهن ويو

مون وڻن جي جُهڳٽن ۾ کيس سڏ ڪيا
ٻانهون ڦهلائي جبل جي چوٽين ڏانهن،
هُو نه آيو.

عورتن جي جوين -

سڪن -

ڏانهن ڏنر لالچي نگاهن سان
هُو نه آيو

ڊوڙيس ٻين کي ڌڪا ڏيندو

ڦريندي جهپ هڻندي

جيئن منهنجو ايشور ترينتا يگ (*) ۾

(*) رامائن جو زمانو

سونهري هرڻ جي پويان ويو هو (★)

پر هُو نه مليو
انهيءَ کي چوندا آهن سُڪ؟

●●●

(★) رامائن ۾ ٻڌايل آهي ته ترينائيگ ۾ رام پنهنجي زال سيتا جي چوڻ تي سونھري ھرڻ جي پويان ويو ھو، جيڪو اصل ۾ ھرڻ نه پر راکشس ھو.

سوار ڪير هو؟

جيون سمورو
هلندي رهي گاڏي
ڦيٽا بدليا
ڏاند بدليا
مان بدليس
آخر ۾
سوار ڪير هو
مان يا گاڏي؟

رنگ به ته هڪ حقيقت آهي

رنگ به ته هڪ حقيقت آهي
جنهن ۾ جاڳنديون آهن ڪلپناون
نوان نوان رنگ گهرن ٿيون
حقيقت ته حقيقت آهي، پر
ايترا رنگ ڪٿان آڻيان؟

وڻ

وڻ سمورا سوچين ٿا

وشو ناگر (Vishva Nagar): هنديءَ جو ڪوي.

جھوٽو اچي
 ته جھومون يا نه جھومون
 هو جھومون ٿا
 پاڙن ۾ ويساھ نه اٿن

زال - مڙس

زال - مڙس کي گڏجي
 مٽي کڻڻو هو جبل

پهرين پهرين ته ڪاٺن
 اهو کنيو نٿي ٿيو
 پوءِ ڪجهه مٽي ڪڇي هيٺ ڪري ٿي پيو
 ڪجهه پري تائين ڪڇڻ لڳو
 پوءِ اهو پري پري تائين مٽي کڻي
 زمين تي
 پنهنجي مدد سان کڻڻ کين اچي ويو

ڪيتري به پنهنجي مدد پاڻ ڪريو
 رکڻ ۽ ٽڪائڻ ۾
 ڪُجهه نه ڪُجهه ته ٽڪر ٿيندو ئي هو
 ڪُجهه نه ڪُجهه
 هر پيري
 مڙس زال ۾
 جڙندو ئي ويندو هو!

پنهنجو رام

پنهنجو رام

جتي ويندو هو
 ڪندو هو گڙبڙ
 ڪاٺيندو هو دڙڪا
 ڪڍي هڙ
 هلندو ويندو
 پوءِ ڪرندو هو ۽
 ڪندو هو گڙبڙ

پنهنجي رام جو
 رام رکڻا لڳي نه هو.



مون کي ويساهه آهي

هن اجاڙ تلاءَ ۾
چمڪندڙ پاڻيءَ جي تري ۾
جيڪا روشني چمڪي ٿي
مون کي اُن تي ويساهه آهي

مون کي ويساهه آهي
ويران زمين تي هت هت نڪري آيل گاهه ۾
۽ هوا جي راند ۾
شين جي تسلسل ۾

مون کي ويساهه آهي
زهر ۽ دوا ۾
نانگن ۾
مڇين ۾
زمين کان پري اُنهن گرهن ۾
تماڪ ۾ ڪريه بشينن ۾
غصي ۽ سهڻ جي شڪتيءَ ۾
ڪلڙهاب ۽ گروپ ۾

اسد زیدي (Asad Zaidi): جنم 31 آگسٽ 1944ع ڪرولي (راجسٿان) ۾. شروع ۾ ڪهاڻيون، مضمون، هڪ ناول 'جاگتا رونا' لکيائين ۽ شاعريءَ جا ترجما ڪيائين. 1975ع کان شاعري ڪري پيو. جواهر لال نهرو يونيورسٽيءَ سان لاڳاپيل آهي. نظمن جو مجموعو 'بهنين اور دوسري نظمیں' ڇپيل اٿس.

ماڻهوءَ جي ڪمزوريءَ ۾

ڌوبين ۽ موجين ۾

جبلن ۽ سمنڊن ۾

هڪ ٿڌيءَ نگاهه ۾

رستي جي لڙاين ۾

ويساهه نه ڪرڻ جي ڏک ۾

ويساهه ڪرڻ جي ڪمزوريءَ ۾

لڳاتار انڪار ڪندي رهڻ ۾

پنهنجي خواهش سان چونڊيل جيل ۾

مون کي ويساهه آهي

مون سان گڏ

انت تائين بچيل هر شيءِ ۾

سائيڪل

تصوير ۾ ڦاٽي چڪي

ورهن کان گڏ رهي ختم ٿيندڙ سائيڪل

مان توکي وساري ڇڏيندس

ڪجهه ئي ورهن ۾

مان توکي وساري چڪو هوندس

پر مان گذرندي ڪار

مان توکي وساري چڪو هوندس:

ڇت ڪري پوندي ديوار ڇڏي ۽

هڪ ٻئي پٺيان سڀ

پاڙيسري تبديل ٿي ويندا

ڪيترن ئي شهرن جي بازارن مان لنگهندس
 مان ڪئين پيرا
 نوڪريون ڳوليندس
 ڪتاب خريد ڪندس
 ڪئين پيرا اوچتون ٻڌ مان
 جاڳي سوچيندس
 اُهو ڇا هو؟
 اُهو ڇا هو؟

هتان هُتان جا
 ڪروڙين بحث هلندا
 مان نڪرندس
 اڻ ڳڻيا پيرا
 نڙي صاف ڪري ڳالهائڻ چاهيندس هت هت
 سمورا موقعا نڪري چڪا هوندا

مان توکي وساري چڪو هوندس
 ڏاڍيون ضرورتون پرنديون
 ڪوبه نه ڏسبو آس پاس

بدلجندي بدلجندي بدلجي وينديون
 خواهشون پڻ
 هلندي ڪنهن ڏينهن
 اوچتو، چوڻيءَ پٽاندرو - روڪي ڇڏيندو
 وقت جو جبل
 ۽ منهنجي اڪيلاپ
 مون کي ڏسڻ ۾ ايندي اُن جي چوڻيءَ تي

مان توکي وساري ويهندس
 ڪنهن چڱي ڏينهن،
 ڪنهن چڱي ٻاهر ۾
 ٽپو ڏيڻ کان اڳ موسر خراب ٿيندي
 ۽ ڪڏهن نه بيهڻ لاءِ وسندو مينهن
 مان رستي تي ڪٿي ڦاسي پوندس
 ۽ ڪو انتظار نه ڪندس.

ايترن ورهين جي پوسل کي چيريندي
 تون اچ
 جيڪڏهن مينهن بيهي رهي
 مينهن نه بيهي ته به تون اچ
 سينور مان نڪري
 پنهنجي پوري ۽ ڌنڌلي شڪل ڪٿي
 سائڪل!

سنگيت ۾ رهندي

هي شخص پنهنجي پسند جي سنگيت ۾
 رستي تي اچي ويندو
 ڏسندو ڏسندو
 باقاعدي ۽ سان ماءُ کي خط لکندو
 ڳڻو ساڙي
 جهنگل مان
 هي شخص نه روئندو
 جڏهن جسم ۾ رت جي گهڻي ڪمي ٿيندي
 ٿڪ قاعدو بنجي ويندو
 روزِ ڪاتب هي نه ٿڪيو
 نيٺ کيس به احساس ٿي ويندو
 ته ڏسو
 هارايل لڙايون ڪيترو ڪم اچن ٿيون!

صبح جي دعا

زندهه رهي منهنجي رضائي جنهن مون کي پاليو

زندهه رهي صبح،

جيڪا منهنجي خوشي آهي

۽ رهن وري سنسار ۾ آهي،

جن کي رهڻو آهي

1965ع

مان ڏيڍيءَ جي باري ۾ ڳالهه ڪري رهيو آهيان

جيڪا اميءَ جي باري ۾ ڳالهه ڪندي هئي

جيڪا مڙس جي باري ۾ ڳالهه ڪندي هئي

جيڪو انهيءَ آفيسر جي باري ۾ ڳالهه ڪندو هو

جيڪو ڊيس جي باري ۾ ڳالهه ڪندو هو

جيڪو جنگ جي باري ۾ ڳالهه ڪري رهيو هو چيخيندي انهن ڏينهن ۾

پاڪستان جي باري ۾ في الحال ڪا ڳالهه نه ڪندس.

تهذيب

وچ واري ڪنهن اسٽيشن تي

دوني ۾ پوري ساڳ ڪٽيندي

پاڻ لڪايون ٿا پنهنجو روڻ

جو اوچتو شروع ٿيڻ لڳي ٿو

بيٺ ۾ پونڊوٽ وانگر

۽ پوءِ لڪائي اچي ڇڏيون ٿا ڪنهن ڪنڊ ۾

پنهنجو دٻو

سوچيون ٿا:

مون کي ڪنهن عورت جنم ڏنو هو
مان هونئن ئي دروازي مان نڪري نه هليو آيو هئس.

دوزخ جي باري ۾

دوزخ ڏاڍي چڱي جاءِ آهي
دوزخ ۾ مان رهيو آهيان ڪجهه ڏينهن ڪنهن سان گڏ
ڀاڱو ۽ پينرو سچ پچ دوزخ هڪ تمام سٺي جاءِ آهي
دوزخ دراصل هڪ جيئري جاڳندي تصوير وانگر آهي
اُتي سچيون پچيون معمولي شيون
جادوئي ڏسڻ ۾ اچن ٿيون:
هونديون ناهن
ائين لڳنديون آهن

دوزخ ۾ جنت جي ياد اچڻ تي
روئڻ تي دل ٽيندي آهي -
سچ پچ دوزخ مان
ڪوبه نڪرڻ نٿو چاهي

دوزخ ۾ تون اڪيلو هوندو آهين
پر اها ايتري خراب ڳالهه نه آهي
دوزخ ۾ توکي جيڪي وڻي سو ڪري سگهين ٿو
ڪريو، پر مهرباني ڪري ظاهر نه ڪريو

بس هڪ ڳالهه آهي
دوزخ ۾ ڪڏهن ڪڏهن
ڌرتيءَ جهڙو خيال هوندو آهي
دوزخ ۾ ٻي ڪا ڪمي ناهي
انهيءَ هڪ کان سواءِ

بهر حال هي گهر آهي!

صبر جو بند ٿيندو
مان دانھن ڪندس:
اڃا تائين ماني تيار ناھي

اهڙي طرح جيون خراب ٿيڻ شروع ٿيندو
اسان پکين جو

اسان کي ياد ايندا پنهنجا ڪٺ
جيڪي اسان پتي ڇڏيا هئا خوشيءَ ۾
اسان کي ياد ايندا
اسان جا تصور

ٻه سال اڳ مان پاڻ کي
پنهنجيءَ ياد ۾
ايڏو خوش سمجهندو هئس
جيترو مان بلڪل نه هئس ٻه سال پوءِ

اهوئي ٿيندو
جنهن دوزخ مان اسان گذرياسين ٻه سال اڳ
اهو وسامي ويندو
سڙي ويندو روزمره جي باهه ۾
ڏوڏو ڪندو
اڄ ڪلهه جو اتهاس

ڏکي اُٿنديون هڪدم نيون پيڙائون
کُلي پوندا بخارا!

جن ۾ الڳ ويهي ويهي
اسان لوڙا بنجي وينداسين.

صاف ڪپڙن کان سواءِ
جيون ۾ ڪجهه نه رهندو صاف

اسان پڪين ارادو ڪيو هو
ڪڏهن اسان ويٺا هوندا سين غصي ۾
ڪنڀن وانگر
انهن کي به پتي اڇلائينداسين

ڪنهن وٽ ڍنگ سڪڻ نه وينداسين
پر پنهنجو سبق سامهون رکنداسين
جيڪڏهن اسان کان ڪجهه پڇيو ويندو جيون کي ڪٽي

ڪو وقت هو
اسان آڌري سگهندا هئاسين
اسان ٻيو ڪجهه به ڪري ٿي سگهياسين
بشرطيڪه راهه هجي ها
بهر حال هي گهر آهي!

پيڻرون

اگر ٿي چڪيون آهيون
پيڻن چيو واريءَ ۾ پورجندي
ڍڪي ڇڏيو هاڻي اسان کي چاهي اسان ترسون ٿيون هتي تون وڃ

پيڻرون ڏينهن جو چهرامٿائي اينديون رهيون
 تپ چڙهيل هو اسان تي سانجهين جو
 اسان جي ٻرندڙ اکين کي اڃا وڌيڪ گرم ڪندڙ پيڻرون
 سراپ وانگر اينديون هيون
 اسان جي ڇج جهڙين زندگين ۾ پيڻرون تريفڪ پريل سڙڪن تي
 مصيبت بنجي سرن مٿان لامارا ڏينديون هيون
 پيڻرون ڪڏهن سڪون حاصل ڪري ويهي رهنديون هيون
 اسان جي زالن جي گرپ ۾ پيڻرون پهرو ڏينديون رهيون

چلمه جي پويان اونڌاهيءَ ۾ بصر چورائي جيڪي اسان کي حيران ڪندا آهن
 انهن چورن کي پٽينديون هيون پيڻرون
 خوش ٿيون پيڻرون اسان جي ٺيڪ ٺاڪ هلندڙ نوڪرين ۾ پريل
 اميدون ڏسي
 پيڻرون ٻارن کي پرين درويشن جا قصا ٻڌائينديون هيون
 سندن تخيل ۾ جهنگلي جا نور پيڻرون آڻينديون هيون
 پيڻرن جيڪي نه ڏٺو ان کي وڌيڪ وڌايو
 پنهنجي اڳيان جي پونجي ميڙيندي ميڙيندي

اها ڪاٺي نه ٻرندي
 ڪنهن جيڪڏهن ايئن چيو ته اسان ناراض ٿينديون سين
 چالاڪ آخر اسان ٿيون آهيون چوڪريون
 ڪاٺيون ٻرنديون آهن جيئن اسان ٻرون ٿيون، توکي ڇاڻ آهي
 ڪاٺيون آهيون اسان چوڪريون
 جيسيتائين آليون آهيون دونهن ڇڏينديون سين
 پيران ۾ اسان جو ڪهڙو وس؟
 اسان ڊيگريون آهيون تنهنجي گهر جون پاءُ، بابا
 امان ڏسو اسان ڊيگريون آهيون
 اسان جي ڪارٽ ڌوبي ويندي، نه ڌوتو ويو اسان کي ته

اسان ڪارٿ بڻجي وڌنديون رهنديون سين
 ۽ اڳڙيون پرينديون رهنديون سين سرير ۾
 جيستائين آهي آلاڻ ۽ سواد
 اسان سڪنديون سين پنهنجي رفتار سان
 اسان سُڪي وينديون سين
 اسان ڪڙ ڪڙائينديون سين هن ڌرتيءَ تي سنائي ۾
 چلهين تي پپهريءَ جو
 پنهنجو ڪٽورو وڃائينديون سين
 اسان جو ڪٽورو پري ڏجان
 مورين تي پاڻي ملي ٿو وڃي ڪٽنب وارو
 پر اناج نٿو ملي
 اسان جو ڪٽورو پري ڏجو

”اسان تنهنجي دنيا ۾ ڪوريٽڙي جيتريون هونديون سين
 اسان هونديون سين ڪوريٽڙا
 گهر جي ڪنهن وساريل ڪنڊ ۾ چار ٿاڻي پيون هونديون سين
 اسان هونديون سين ڪوريٽڙا ڌوڙ پريل ڪنڊن جون
 اسان هونديون سين ڌوڙ
 اسان هونديون سين اڏوهيون طاقتن جي چيرن ۾
 پيتيءَ جي هيٺان رهي وينديون سين
 اسان رات جو تڏين وانگر ڳالهائينديون سين
 ڪٽنب جي ننڊ کي سهارو ڏيندڙ اسان هونديون سين تڏيون

اگر ٿي چڪيون آهيون اسان
 پينرن چيو واريءَ ۾ پورجندي
 اگر ٿي ويون آهيون
 چيوسين جوتن سان مار ڪائيندي
 اگر

سڏڪندي

پينرون سڏڪن ٿيون: رڪ آهيون اسان

رڪ آهيون اسان

دڙاڏامي ويهي رهندي سڀنيءَ جي مٿي تي

سڪي ويندا تنهنجي اکين ۾ سستيءَ جا چاڀوڙا

ڳچيءَ تي تيل جو تھ ڄمي ويندو ڏسج!

پينر مير بنجي وينديون هڪ ڏينهن

هڪ ڏينهن صابن سان نڪري وينديون يادن مان

گوڏن ۽ نوننن کي ڇڏي

مرن نٿيون پر اُهي وينيون رهنديون آهن صدين تائين گهرن ۾

پينرن کي دٻائيندي دنيا گذرندي وڃي پئي

جيون جي چيڪاٽ ڪندڙ پل مٿان

خاندانن جي دانھيندڙ لائوڊ اسپيڪر کي جيئن تينن دٻائيندي

ڪنڌ جهڪائي پنهنجن ڦلڪڻن کي ڏسندي

هڪ ڏينهن رستي ۾ جڏهن اسان جي نڪ مان رت وهي رهيو هوندو

مٽيءَ ۾ ملي رهيو هوندو

زمين جي گھنجن ۾ ويڃايل پينرن جا ڪارا جسم جاڳي پوندا

پورهئي جي گپ ۾ لٽڙيل پنهنجين پوتين جي پلانڊن سان

اسان کي گھيرڻ اينديون پينرون

بچائي وٺڻ چاهنديون اسان کي پنهنجي رُڪن هٿن سان

گھڻا ورهيه گذري ويندا

ايترا جو اسان ٻچي نه سگھنداسين

نامراد عورت

نامراد عورت

ماني ساڙي ڇڏي ٿي

ويھ ورھيہ اڳ ڪنھن
ھن جو ٻيڙو ٻوڙيو ھو
پيار ۾

نامراد عورت وٽ
اُن وقت
۾ جوڙا ڪپڙن جا ھئا
نامراد عورت وساري ويئي ھئي
پوتي پاڻ جو ڍنگ
نامراد عورت جي شلوار
گوڏن وٽان ڦاٿل ھئي

ھيترا ورھيہ لنگھي ويا
بي شرم ايتري ئي آھي
بي شعور ايتري ئي آھي
ھاڻي تہ ڏسو سندس
ھڪ اک بہ وڃي رھي آھي.



هڪ اڻ ڄاڻ ٻار جو مرثيو

هن گهرجي اڱڻ ۾
پُٽ!

اسان ڪڏهن نه اينداسين

هن گهرجي اڱڻ ۾ تون

ايتن ئي ٻين ورهندين

ماءُ جي جوانيءَ کان ٻڌاپي تائين

ماءُ جي سڀني ۾ جڏهن به

ايتري عمر ۾ ڦاٿل رهندين

ٻن- اڏائي ورهين جي عمر ۾-

اچو وڳو تنهنجو ايتن چمڪندو

سال به سال

گهرجي گاهه تي

ماءُ جي ننڍ ۾ مرندين تون، پٽ

ماءُ جي سڀني ۾ جيئندين...

ماءُ جي سڀني واري جنهن گهر ۾ تون آهين

گگن گِل (Gagan Gill): جنم 18 نومبر 1959ع. دهلي يونيورسٽيءَ مان انگريزي ادب ۾ ايم. اي ڪيل. هنديءَ ۽ پنجابيءَ جي شاعرا ۽ ليکڪا. هنديءَ ۾ 'پشينيٽي'، 'لهر' ۽ 'مڪت ڪنٺ' نظر شايع ٿيل. پنجابيءَ ۾ شاعريءَ جي انتخاب "درشيه بدلتی هوئی" جي ٽن ايڊيٽرن مان پاڻ هڪ. ٽائيمس آف انڊيا جي رسالي 'واما' سان لاڳاپيل.

اُن جي هڪ پاسي ندي آهي
۽ ٻئي پاسي جبل
تو کي ڪنهن جي به خوف جو اندازو ناهي
پُٽ
ڪيتري دير بيٺو رهندين تون
گهر کان ٻاهر؟ پٺل گاهه تي؟
نمونيا وٺي ويندي تنهنجي ننڍڙي ڇاتيءَ کي...

ماءُ تنهنجي سڀني ۾
دريءَ جي اُس ۾ ويهي
ڪي ورق ورائي ٿي
تون ڪيئن جهڪندين، پُٽ
هن جي اُس وارن ورقن تي؟
تون ڪيئن ڪيڏندين، پٽ، بابا جي عينڪ سان؟
تون ته هُن گهر جي ٻاهر آهين...
ماءُ يا پيءُ جو ڪو ڪتاب ڪيئن ڦاڙيندين تون؟

هن گهر ۾ پٽ، هو ڪڏهن نه ايندو
هر سال هن موسم ۾ ماءُ توکي گرم ڪپڙا پاريائيندي،
۽ هر سال تون هن جي ننڍ ۾ مرندين
ڪهڙي ماءُ آهي تنهنجي
جيڪا ههڙي ٻولي ٻولي ٿي تولاءِ
تون مرندين ڇو پلا؟
نه اڃا تنهنجي قميص ميري ٿي،
نه پتڪڙن پيرن تي پسيل مٽي لڳي...

پر پُٽ! تڏ ته لڳي ويئي آهي نه
سموري جبل جي تنهنجي جسم تي،
برفاني هوا ته گهيري ورتو آهي نه تنهنجي ساهه کي،

سيپٽمبر جي پڇاڙي آهي اها،
 هن کان پوءِ ته اڃا به ڏکيائي ٿيندي..
 ڪيتري دير بيٺو رهندين تون؟
 سڀني واري گهر جي اڱڻ ۾ ماءُ هاڻي ڪڏهن نه ايندي...
 پٿر ٿي ويندي هن جي چاٽي
 پٿر
 جيڪو توکي گرمي نٿو ڏيئي سگهي...

ماءُ جي عمر جي هن موسم ۾ ڇا کائي مرندين، پٽ،
 مٽي، گاهه، برف -
 اول ڪنهن کي ڪوٽيندين پنهنجن پٽڪڙن هٿن سان...

بس، ننڍن مٿان ڪوٽين ماءُ جي ڪڏهن
 اُن ۾ هُن جي سڀني جي مٽي ڦاٿل هوندي،
 برف به، گاهه جو تيلو به...

جيئو - ڪوش اڃا تنهنجي
 پيءُ جي جسم ۾ آهي ڳچو ڳچو
 ننڍن ۾ هلندڙ ماءُ
 پهچي ته ڪيئن پهچي تو وٽ؟
 سمورا ڪتاب جڏهن
 پڙهي پورا ڪندو تنهنجو پاپا
 موتي ئي ايندو نيٺ
 هن گهر ۾

تيسٽائين پٽ، تون اتي ئي رهج، ائين ئي
 سنڌ، ڪنوارين مائرن جي مثل آرزوئن ۾
 جيئن رهندا آهن ٻار -
 سُنن ٻارن وانگيان.



آتيلو يوسف

هنڱريائي (هنڱري)

هڪ نظم جي پڇاڙي

ڪير وارن ڏندن سان

تو جبل توڙڻ چاهيو

مورڪ!

سپنا ڏسڻ لاءِ

چاراٺ ئي ڪافي نه هئي؟

•••

آتيلو يوسف: هنڱريءَ جي هن شاعر 1925ع ۾ جنم ورتو ۽ 1970ع ۾ خودڪشي ڪئي.

اي سموري دنيا جي آزادي!

هڪ خيال مون کي پريشان ڪري ٿو
متان ڪٿي وهائي ٿي مٿور ڪي مري نه وڃان
يا هوريان ڪنهن گل وانگر ڪو ماڻجي نه وڃان
متان ڇا ٿي منهنجيءَ کي ڇهڻي نه ڇڏڻ
۽ منهنجي پنڪڙي پنڪڙي ڏانڊيءَ مان ڇڻندي رهي
يا ڪنهن ويران ڪمري جي روشنيءَ وانگر
اونڊاهيءَ ۾ سڌ ڪندي رهي...
اي مالڪ! شل ائين ڪونه مري....

مان چاهيان ٿو ته - مان ڪو وڻ هجان
۽ آسمانن جي وچ مون تي ڪري
يا ڪا ڳوڙي ڇپ هجان
جيڪا جبل تان بولا تيون کائي
ڪنهن وڻڪار تي ڪري،
۽ ٻيڙين ۾ جڪڙيل هر قوم
جڏهن جنگ جي ميدان تي اچي
ته سندس چهري تي لهو جي لالاڻ هجي
هت ۾ جهليل جهنڊو اُڀو هوا ۾ لهرائيندو رهي -

شانددور پڻتوفي: هنگريءَ جو هيءُ شاعر 1922ع ۾ پيدا ٿيو، آسٽريائي حڪومت جي خلاف پنهنجي شاعري
۽ عملي جدوجهد ڪندو رهيو ۽ آخر ۾ سرڪاري فوج جي خلاف وڙهندي جولاءِ 1949ع ۾ مارجي ويو.

اسان کي آزاد ٿيڻو آهي
 ۽ انهيءَ آواز جو پٽاڏو اوڀر کان اولهه ۾ هجي...
 اُن وقت مان، ڏاڍو خوش، اُن ميدان ۾ هجان
 ۽ رت منهنجي جو آخري ڦڙو انهيءَ ڌرتيءَ تي ڪري
 ۽ منهنجو پڇاڙو ڪو آواز لوهه جي آواز ۾ پڙي...

پوءِ منهنجي لاش مٿان
 فاتح فوجين جا گهوڙا ڊوڙندا لنگهن
 ۽ دليرن جي ياد ۾ هڪ ماتمي جلوس هجي
 جيڪي تولا ۾ مٽا آهن،
 اي سموري دنيا جي آزادي!
 جيڪي منهنجون هڏيون
 انهن جي هڏين سان گڏ قبر ۾ هجن
 اي سموري دنيا جي آزادي!

رادنوتي مڪلوش

هنگريائي (هنگري)

هڪ وياڪل گهڙي

مان تمام اوجھو، هوا ۾ ويندو هوس، سج ڀرسان
هنگري، تو پنهنجي ڄاڻي کي ڌرتيءَ سان ڪيئن ٻڌي رکيو؟
ڏس، منهنجي تن تي پاڇن جي پوشاڪ آهي
۽ لهندڙ سڄن جي باهه منهنجا هٿ نٿي گرمائي
جبلن جون چوٽيون تمام پري ۽ آسمان اُن کان به پري آهي
مان گونگن پٿرن جي پاڻال ۾ ڪريو آهيان
شايد مون کي ماڻ رهڻ گهرجي
اڄ شعر چو پيو لکان!
زندگيءَ جي ڳالهه ڪيئن نڪتي؟ ڪنهن به نه چيڙي
۽ شعر جو سوال به ڪنهن نه ڪنيو.
سڌا اٿم - اها رڙ به اجنبِي آهي
اهي مون کي مٽيءَ ۾ نه دفنايندا
رڳو هو ائي هڏين کي وکيري ڇڏيندي...
پر وري، هڪ پٿر مان آواز گونجندو

رادنوتي مڪلوش: هنگريءَ جو هي شاعر 1901ع ۾ ڄائو هو. هنگري توڙي فرانس جي ادب جو اڀياس ڪندي، شاگرد سنگت ٺاهي، ڳوٺاڻي زندگيءَ جو اڀياس ڪيائين. يهودي هجڻ ڪري روزگار حاصل ٿي نه سگهيس. 1944ع ۾ ڪيس يوگوسلوويا جي بورنالي شهر ۾ هڪ پيانڪ عذاب ڏيندڙ ڪئمپ ۾ رکيو ويو. يوگوسلوويا کان جرمن فوجون جڏهن واپس موٽيون ٿي ته رادنوتي پنهنجي وطن جي سرزمين تان لنگهندي ٽڪجي ڪري پيو ته نازين جي چوڻ تي 1944ع ۾ جڏهن ڪيس گولي هڻي ماريو ويو ته سندس ڪوٽ جي ڪيسي مان ڪجهه شعر مليا. سندس شعرن جا مجموعا آهن: 'پيگن گيريٽنگ'، 'سانگ آف ماڊرن شيفريس'، 'رائيزنگ ونڊ'، 'نيومون'، 'ڪيپ آف وڪنگ يو ڊومڊ ۽ اسٽيپ روڊ'.

اهي لفظ جي اڄ جوان پيو
۽ جوان مرد ۽ عوتون -
سڀ سمجھي ويندا...



نانگ

تون تهذيب يافته ته آهين ڪونه
شهر ۾ رهڻ جو به توکي موقعو نه مليو
هڪ ڳالهه پڇانءِ؟
جواب ڏيندين؟
ڏنگڻ ڪيئن سڪين
۽ زهر ڪٿان ملي نه؟

...

ڪوڙا ماڻهو

ڪي ماڻهو چون ٿا
تون پنهنجن وارن کي رنگ ڪرين ٿي
ڪوڙا آهن اهي ماڻهو، پياري نڪيلا
چو ته تون ڪلي بازار ۾
ڪارا نقلي وار خريد ڪرين ٿي.

سبب

’دراڻن‘ کي ڦاهي چاڙهيو پئي ويو
پر جڏهن هن پنهنجي ڀرسان هڪ ٻئي شخص کي
پاڻ کان اوچي ڪراس تي ڏٺو
ته ويچارو ويس ۽ ساڙ کان ئي مري ويو.

خريداري

سانئڻ!

اوهان بازار ويون
۽ نقلي وار، سُرخي، پاڻوڊر ۽ ڏند خريد ڪري آيون
ايتري قيمت ۾ اوهان
هڪ نئون چهرو ئي خريد ڪري وٺو ها.



لوسي لئیس: يونان جي هن شاعرا جي 100ع ۾ لکيل ڪوتا.

ولي رام ولي جا لکيل، ترجمو ڪيل ۽ ترتيب ڏنل ڪتاب

● ترجمو ڪيل ناول

- (1) غدار (اردو): ڪرشن چندر (1968-1980-1990)
- (2) سيتا هرڻ (اردو): قرة العين حيدر (1977-1982-1996)
- (3) بند دروازو (پنجابي): امرتا پريتم (1978-1991)
- (4) ڌاريو (فرينچ): البير ڪاميو (1993)
- (5) پوئين بهر جا پانڌيڙا (اردو): قرة العين حيدر (2000)
- (6) ائنا ڪرپينا (روسي): ليونالستاء
- (7) ڪهاڻي هُن جي (پنجابي): امرتا پريتم
- (8) سُمهيل پاڻي (هندي): سرويشور ديال سڪسينا
- (9) چئن ڪُتن جو مسيحا (هندي): سرويشور ديال سڪسينا
- (10) ڪارو ڪتاب (هندي): عابد سورتِي

● ترجمو ڪيل ۽ ترتيب ڏنل ڪهاڻين جا مجموعا

- (1) ٽين دنيا جون ڪهاڻيون (1980)
- (2) ٽڪل سُریت ۽ ٻيون ڪهاڻيون (اٽالين): انبر تو موراويا (1983)
- (3) نيڻ تارا ۽ ٻيون ڪهاڻيون (هندي ۽ اردو): (2003)
- (4) بهشت ۽ دوزخ، ۽ ٻيون ڪهاڻيون (ننڍي ڪنڊ جون مختلف ٻوليون)
- (5) يورپي ڪهاڻيون
- (6) آمريڪي ۽ لاطيني آمريڪا جون ڪهاڻيون
- (7) ڏور-اوپر جون ڪهاڻيون

● اصلوڪيون ڪهاڻيون

- (1) زندگيءَ جو هڪ ڪيل ٽڪرو ۽ ٻيون ڪهاڻيون
- (2) زندگي سي ڪتا هوڻا ٽڪڙا (اردو ترجمو: بشير عنوان): (2001)
- (3) ليڪا نه اورانگهن جهڙا (ڪهاڻي جو انگريزي ترجمو "Barriers That Remained": پينگئن بڪس جي انڊين ايڊيشن "A Letter from India" (2004) ۾ شامل.

● شاعري (طبع زاد ۽ ترجما)

- (1) اڏارون آڪاس ۾
- (2) ڪويتا ڦلواڙي (مختلف ملڪن جي 28 ٻولين جي شاعريءَ جو ترجمو)
- (3) لُو (شمشير الحيدري جي شعري مجموعي 'لات' جو اردو ترجمو)

● ڏيهي ۽ پرڏيهي رچنائون ۽ رچناڪار

- (1) ڪير ڌارا (سنڌي ليکڪن ۽ ڪتابن جي باري ۾)
- (2) پرڏيهي سرجهار ۽ سندن رچنائون

- آتم ڪهاڻيون، جيون ڪٿائون، خط ۽ انٽرويو (1) اقبال (اردو): احمد نديم قاسمي (1977)
- (2) سدا ساوا پن (محمود درويش - ڀڃال - نروڊا - لورڪا): (1984)
- (3) مون وٽ نڪا پيئي، نڪو ڪلف ڪجي (ڀڳت کير چند آسائيءَ جي آتم ڪهاڻي): (2004)
- (4) جي مارن مون ڏي مڪا (هند - سنڌ جي ليکڪن جا خط)
- (5) سنهڙا (ڏيئرن جا خط)
- (6) مڪاميلا (انٽرويو)

• تاريخ

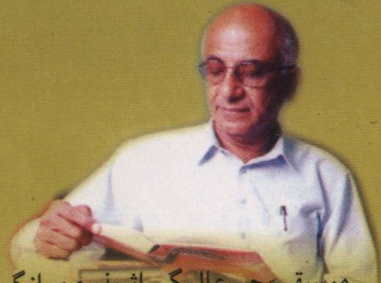
- (1) سنڌ ڪهاڻي (ڪيول ملڪاڻي جي تصنيف 'The Sindh Story' جو ترجمو):
- (پهريون ايڊيشن (1991) تاج جويي جي نالي ۾ ۽ ٻيو ايڊيشن (2002) ورو جي نالي ۾)

• فلسفو ۽ مذهب

- (1) گيتا جو اڀياس (سارديسائي ۽ دليپ بوس جي ڪتاب 'Gita in Marxism' جو ترجمو (1992)
- (2) من جي شائتي (هنديءَ مان ترجمو)

• ايڊٽ ڪيل ۽ ترتيب ڏنل ڪتاب ۽ رسالا

- (1) ماهوار 'سهڻي' (طارق اشرف جي ٻانهن ٻيليءَ جي حيثيت سان)
- (1) 1, 2, 3, 1971, 4, 1971 ۽ (3) 5, 1971
- (2) عالمي ادب-I (ظفر حسن سان گڏ): (1978)
- (3) سنڌي ساهت-I (حليم بروهي ۽ ٻين سان گڏ): (1979)
- (4) آرسي پبليڪيشن-5 جلدن ۾ (ظفر حسن سان گڏ): 1 ۽ 2, 1983/2, 1984/3, 1985/4, 1986/5
- (5) ٻار سنڌي ڪهاڻيءَ ۾ (28 چونڊ ڪهاڻيون): (1984)
- (6) پنڌرهن روزه 'عبرت' (ابتدائي 4 شمارن جي ايڊيٽوريل بورڊ ۾ شامل):
- (1) جون 1987 کان 31 جولاءِ 1987
- (7) ڇهه ماهي "سنڌي ادب" (1) 1989 (2) 1994 (3) 1995 (4) 1996 (5) 1997
- (8) ٽماهي "سنڌالاجي نيوز ليٽر" (1) 1/1, 1993 (2) 2/1, 1993 (3) 3/1, 1994 (4) 4/1, 1994-95
- (9) ماهوار 'پرير ساگر' جو "سامي خاص نمبر" (تاج جويي سان گڏ): (2002)
- (10) ظفر حسن جي ڊائري جلد-I (ظفر جوڻيجي ۽ رفيق منگيءَ سان گڏ): (2003)



موسیقیء جي عالمگیر اثر پذیریء وانگر اُن جو همدم ۽ هر آهنگ ”شعر“ اوترو ٿي
اثر رکي ٿو.

ڀانت ڀانت انساني آواز مان لفظ جُڙيا ۽ لفظن جي گونا گونيءَ مان ٻوليون جُڙيون -
ان طرح ٻوليءَ جو ڪرشمه ساز انسان پاڻ آهي، ۽ چئي ٿو سگهجي ته ٻولي سڄيءَ
جيوٽ ۾ انسان جو بي بدل امتياز آهي، ٻولي سندس اندر جو آواز بلڪ سُرود ۽ ساه
آهي. انسان جي سڄي ڄاڻ ۽ ڏاهپ ٻوليءَ سان آهي. ٻوليءَ کان سواءِ قوم به ڪانه ٿي
ٿئي، قومن جي بقا ۽ ترقيءَ لاءِ ٻوليون سندن اڏول سماجي وسيل آهن.

ٻوليون علمي ۽ ادبي وسعت ۽ سگهه ۾ وڌ گهٽ هنجي سگهن ٿيون. واڌيءَ گهڻيءَ
۾ هر ٻولي گهڻو وقت پنهنجو خال اڻ ڀريل به ڪانه ٿي ڇڏي.

خوشيءَ جي ڳالهه اها به آهي ته انسان جون ڪي به ٻوليون پنهنجن فڪري، فني ۽
جذباتي خزینن کي سڀيل مُهر ڪري نٿيون رکن، بلڪ وندڻ ۽ ورهائڻ لاءِ هر دم تيار
رهن ٿيون. علم، فن ۽ ادب جي هن ڏي وٺ ۾ ٻولين کي مفت ڏيڻ ۾ به عار ڪونهي ۽
مفت وٺڻ ۾ به ڪا هيڪ نٿي ٿئي، ڇو ته سندن ان نعمت کي نه چوريءَ جو ڊپ آهي ۽ نه
ڪٽڻ جو انديشو؛ بلڪ سندن خزانا ڏي وٺ سان وڌندا ئي رهن ٿا. ان ڪري منجهن نه
ڏيڻ واريون ڏيندي ٿيون ٿڪجن ۽ نه وٺڻ واريون وٺندي ٿيون ڍاپين. فني ۽ علمي طور
ائين به مڃيل آهي ته هيءَ ڏي وٺ وڌيڪ فائديمند تڏهن آهي جڏهن ٻين ٻولين مان
پنهنجي ٻوليءَ ۾ ترجما ڪجن - جيئن اسان جي محب قوم ۽ ڏاهي دوست ولي رام ولي
هميشه پئي ڪيو آهي. پنهنجي ٻوليءَ مان ويهي ٻين ٻولين ۾ ترجما ڪجن، عام طرح
دنيا ۾ ائين نٿو ٿئي جيئن اسان جي اديبن کي بار بار اتساهيو ويندو آهي.

دوست عزيز ولي رام ولي جي پورهئي جو مُسودو ”ڪوتا - ڦلواڙي“ پڙهڻ لاءِ
مليم، جنهن ۾ پاڻ 26 عالمي ٻولين جي چونڊيل 112 شاعرن جو ترجمو ڪيو اٿن - ۽
خوب ڪيو اٿن. پڙهندي پڙهندي، پنهنجي سڄي هن اعليٰ انتخاب ۽ ترجمي تي کين
”مبارڪ، صد مبارڪ!“ چوڻ کان رهي نه سگهيس. محترم عالم ۽ اديب آصف فرخيءَ
سندن هن پورهئي جو تعظيم طور وڏي قدر لائق مهاڳ لکيو آهي ۽ ان کي سنڌي ادب
۾ ”نئين سفر جو استعارو“ سڏيو آهي، ۽ چيو آهي: ”هيءَ رڳو هڪ ڪتاب ناهي، جنهن
جا هتان هتان اجايا سجايا صفحا ورائجن... هيءَ ڪتاب مون لاءِ ائين آهي جيئن ڪو
هلڻ لاءِ چوي ۽ بس اتي هلي پئجي.“ خود پاڻ پنهنجي هيءَ عاليشان پيشڪش ”ڪوتائن
جي ڪاڪ محل ۾ مترجم جا ويچار“ عنوان سان پڙهندڙن آڏو آڻيندي، جو ڪجهه چيو
اٿن، ان کان وڌ ڪجهه چوڻ آءٌ نه ضروري ٿو سمجهان ۽ نه چئي ٿو سگهان: ”زنده ڪوتا
جو وڏو حصو رڳو تڏهن زورائڻو ۽ ڀرپور پڙاڏو پيدا ڪندو، جڏهن ان جو اظهار شاعراڻي
روح کي زخمي ڪرڻ کان سواءِ ڪيو ويندو... مون ترجمي ڪيل ڪوتائن ۾ انهن جي
روح سان هٿچراند ڪرڻ بدران انهن جو اصولو آهنگ قائم رکڻ جي ڪوشش ڪئي
آهي... منهنجي اها ڪوشش دل جي چٽي جو نتيجو آهي، جنهن ۾ پيار جو پورهيو
شامل آهي... منهنجي هيءَ ڪوشش پسند پئي ته پنهنجو پورهيو سڃايو سمجهندس.“

هڪ لب بندر نماڻو ليکڪ پنهنجي پورهئي سان واڳيل، پاڻ لاءِ پنهنجن لائق پڙهندڙ
کي ٻيو ڪجهه چئي به ڇا ٿو سگهي!

The Reading Generation

1960 جي ڏهاڪي ۾ عبدالله حسين ”اُداس نسلين“ نالي ڪتاب لکيو. 70 واري ڏهاڪي ۾ وري ماڻِڪُ ”لڙهندڙ نسل“ نالي ڪتاب لکي پنهنجي دورَ جي عڪاسي ڪرڻ جي ڪوشش ڪئي. امداد حُسينيءَ وري 70 واري ڏهاڪي ۾ ئي لکيو:

انڌي ماءُ جڙيندي آهي اونڌا سونڌا ٻارَ
ايندڙ نسل سَمورو هوندو گونگا ٻوڙا ٻارَ

هر دور جي نوجوانن کي اداس، لڙهندڙ، ڪڙهندڙ، ڪڙهندڙ، ٻرندڙ، ڇرندڙ، ڪرندڙ، اوسيئڙو ڪندڙ، پاڙي، ڪاڻو، پاڇوڪڙ، ڪاوڙيل ۽ وڙهندڙ نسلن سان منسوب ڪري سگهجي ٿو، پر اسان انهن سڀني وچان ”پڙهندڙ“ نسل جا ڳولائو آهيون. ڪتابن کي ڪاڳر تان ڪڍي ڪمپيوٽر جي دنيا ۾ آڻڻ، ٻين لفظن ۾ برقي ڪتاب يعني e-books ٺاهي ورهائڻ جي وسيلي پڙهندڙ نسل کي وڌڻ، ويجهڻ ۽ هڪ ٻئي کي ڳولي سھڪاري تحريڪ جي رستي تي آڻڻ جي آس رکون ٿا.

پڙهندڙ نسل (پڻ) ڪا به تنظيم ناهي. اُن جو ڪو به صدر، عهديدار يا پايو وجهندڙ نه آهي. جيڪڏهن ڪو به شخص اهڙي دعويٰ ڪري ٿو ته پگ ڄاڻو ته اهو ڪوڙو آهي. نه ئي وري پڻ جي نالي ڪي پئسا گڏ ڪيا ويندا. جيڪڏهن ڪو اهڙي ڪوشش ڪري ٿو ته پگ ڄاڻو ته اهو به ڪوڙو آهي.

جهڙيءَ طرح وڻن جا پَن ساوا، ڳاڙها، نيرا، پيلا يا ناسي هوندا آهن اهڙيءَ طرح پڙهندڙ سُئل وارا پَن به مختلف آهن ۽ هوندا. اُهي ساڳئي ئي وقت اُداس ۽ پڙهندڙ، ٻرندڙ ۽ پڙهندڙ، سُست ۽ پڙهندڙ يا وڙهندڙ ۽ پڙهندڙ به ٿي سگهن ٿا. ٻين لفظن ۾ پَن ڪا خصوصي ۽ تالي لڳل ڪلب Exclusive Club نه آهي.

ڪوشش اها هوندي ته پَن جا سڀ ڪم ڪار سهڪاري ۽ رضاڪار بنيادن تي ٿين، پر ممڪن آهي ته ڪي ڪم اجرتي بنيادن تي به ٿين. اهڙي حالت ۾ پَن پاڻ هِڪڙيءَ جي مدد ڪرڻ جي اصول هيٺ ڏي وٺ ڪندا ۽ غيرتجارتي non-commercial رهندا. پَن پاران ڪتابن کي ڊجيٽائيز digitize ڪرڻ جي عمل مان ڪو به مالي فائدو يا نفعو حاصل ڪرڻ جي ڪوشش نه ڪئي ويندي.

ڪتابن کي ڊجيٽائيز ڪرڻ کان پوءِ اهم مرحلو ورهائڻ distribution جو ٿيندو. اهو ڪم ڪرڻ وارن مان جيڪڏهن ڪو پيسا ڪمائي سگهي ٿو ته ڀلي ڪمائي، رڳو پَن سان اُن جو ڪو به لاڳاپو نه هوندو.

پَن کي کليل اکرن ۾ صلاح ڏجي ٿي ته هو وَس پٽاندڙ وڌيڪ کان وڌيڪ ڪتاب خريد ڪري ڪتابن جي ليکڪن، ڇپائيندڙن ۽ ڇاپيندڙن کي هِٿائڻ. پر ساڳئي وقت علم حاصل ڪرڻ ۽ ڄاڻ کي ڦهلائڻ جي ڪوشش دوران ڪنهن به رڪاوٽ کي نه مڃڻ.

شيخ آياز علم، جاڻ، سمجھ ۽ ڏاهپ کي گيت، بيت، سٽ، پُڪارَ سان
 تشبيهه ڏيندي انهن سڀني کي بمن، گولين ۽ بارود جي مدِ مقابل بيهاريو
 آهي. اياز چوي ٿو ته:

گيت به چڻ گوريلا آهن، جي ويريءَ تي وار ڪرڻ ٿا.

.....

جئن جئن جاڙ وڌي ٿي جڳ ۾، هو ٻوليءَ جي آڙ چُپن ٿا؛
 ريتيءَ تي راتاها ڪن ٿا، موٽي منجهه پهات چُپن ٿا؛

.....

ڪالهه هُيا جي سُرخ گلن جيئن، اڄڪلهه نيلا پيلا آهن؛
 گيت به چڻ گوريلا آهن.....

.....

هي بيت اُتي، هي ٻم- گولو،

جيڪي به کڻين، جيڪي به کڻين!

مون لاءِ ٻنهي ۾ فرقُ نه آ، هي بيتُ به ٻم جو ساٿي آ،
 جنهن رڻ ۾ رات ڪيا راڙا، تنهن هڏ ۽ چمَ جو ساٿي آ -

ان حساب سان اڻڄاڻائي کي پاڻ تي اهو سوچي مڙهڻ ته ”هاڻي ويڙهه ۽
 عمل جو دور آهي، اُن ڪري پڙهڻ تي وقت نه وڃايو“ نادانيءَ جي نشاني
 آهي.

پڻ جو پڙهڻ عام ڪتابي ڪيڙن وانگر رڳو نصابي ڪتابن تائين
 محدود نه هوندو. رڳو نصابي ڪتابن ۾ پاڻ کي قيد ڪري ڇڏڻ سان سماج
 ۽ سماجي حالتن تان نظر ڪڍي ويندي ۽ نتيجي طور سماجي ۽ حڪومتي
 پاليسيون policies اڻڄاڻن ۽ نادانن جي هٿن ۾ رهنديون. پڻ نصابي ڪتابن
 سان گڏوگڏ ادبي، تاريخي، سياسي، سماجي، اقتصادي، سائنسي ۽ ٻين

ڪتابن کي پڙهي سماجي حالتن کي بهتر بنائڻ جي ڪوشش ڪندا.

پڙهندڙ نسل جا پڻ سڀني کي چو، چالاءِ ۽ ڪينئن جهڙن سوالن کي هر بيان تي لاڳو ڪرڻ جي ڪوڏ ڏين ٿا ۽ انهن تي ويچار ڪرڻ سان گڏ جواب ڳولڻ کي نه رڳو پنهنجو حق، پر فرض ۽ اڻٽر گهرج unavoidable necessity سمجهندي ڪتابن کي پاڻ پڙهڻ ۽ وڌ کان وڌ ماڻهن تائين پهچائڻ جي ڪوشش جديد ترين طريقن وسيلي ڪرڻ جو ويچار رکن ٿا.

توهان به پڙهڻ، پڙهائڻ ۽ ڦهلائڻ جي ان سهڪاري تحريڪ ۾ شامل ٿي سگهو ٿا، بس پنهنجي اوسي پاسي ۾ ڏسو، هر قسم جا ڳاڙها توڙي نيرا، ساوا توڙي پيلا پن ضرور نظر اچي ويندا.

وڻ وڻ کي مون پاڪي پائي چيو ته ”منهنجا پاءُ
پهتو منهنجي من ۾ تنهنجي پڻ پڻ جو پڙلاءُ.“
- اياز (ڪلهي پاتم ڪينرو)

سند سلامت

www.sindhsalamat.com

سند سلامت جو مشن ۽ مقصد سنڌي ٻوليءَ جي ڊجيٽلائيزيشن ۽ پکيڙ کي وسيع ڪرڻ آهي ۽ پڻ دنيا سان گڏ سندس رفتار سان هلڻ جو سانباھو آهي، ڇو ته تاريخ هميشه انهن قومن جو احترام ڪيو آهي جن پنهنجي علمي سرمايي جي حفاظت ڪئي آهي. سند سلامت پڻ پنهنجي ٻوليءَ جي بقاء خاطر سنڌي ٻوليءَ ۾ لکيل قيمتي ۽ ناياب ورثي کي ضايع ٿيڻ کان بچائڻ ۽ ان کي نه رڳو محفوظ رکڻ پر پنهنجي اديبن، ليکڪن، محققن ۽ شاعرن جي علم، هنر ۽ تخليق کي ڊجيٽلائيز ڪندي دنيا جي ڪنڊ ڪڙڇ ۾ موجود سنڌين تائين مفت ۾ آسانيءَ سان پهچائڻ جو عزم ڪيو آهي.

اسان جي خواهش هئي ته سنڌي مواد تي مشتمل هڪ اهڙو ڪتاب گهر قائم ڪجي جتي هر موضوع تي مشتمل ڪتاب موجود ملن. ڪتابن کي ڳولڻ ۽ ڏاڻوڻوڊ ڪرڻ اسان هجي ۽ ايندڙائيد سميت آڻي فون يا ونڊوز آپريٽنگ سسٽم سميت هر قسم جي ڊوائيس تي آساني سان آن لائين پڻ پڙهي سگهجي.

۽ اهو سڀ ”سند سلامت ڪتاب گهر“ ذريعي ئي ممڪن ٿي سگهيو. اميد ته سند سلامت ڪتاب گهر ذريعي سموري دنيا ۾ موجود سنڌي نه صرف پرپور لاڀ حاصل ڪندا پر سند سلامت ڪتاب گهر کي وڌيڪ فائديمند بنائڻ لاءِ پنهنجو پورو ساٿ نڀائيندا.

books.sindhsalamat.com

سند سلامت ڪتاب گهر جي ايندڙائيد اپليڪيشن پلي اسٽور جي هن لنڪ تان ڏاڻوڻوڊ ڪريو:

<https://play.google.com/store/apps/details?id=com.sindhsalamat.book>